

साई वचन

सद्गुरु श्री साई बाबा के 11 वचनों का सार



साई वचन

सद्गुरु श्री साई बाबा के 11 वचनों का सार

सुमीत पोंदा 'भाईजी'

रेखांकन :
साई रत्न राजेश



Mandrake Publications



Mandrake Publications

Corporate Office
A-6 BDA Colony, Koh-e-Fiza,
Bhopal 462001 (M.P.)

Phone No. +91 7898525131

www.mandrakepublications.com

Email : mandrakepublications@gmail.com

First Edition - 2021

Copyright @ Sumeet Ponda 2021

ISBN : 978-81-94556-89-3

Book Composed by : Anant Book Design

Cover Designed by : inker.com

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced in any form or by any means without the prior written permission of the publishers.



विषय सूची

भूमिका	7
प्रस्तावना	10

साई बाबा का पहला वचन जो शिर्डी में आएगा, आपद दूर भगायेगा।	13
--	----



साई बाबा का दूसरा वचन चढ़े समाधि की सीढ़ी पर, पैर तले दुःख की पीढ़ी कर।	23
--	----



साई बाबा का तीसरा वचन त्याग शरीर चला जाऊंगा, भक्त हेतु दौड़ा आऊंगा।	33
--	----



साई बाबा का चौथा वचन मन में रखना दृढ़ विश्वास, करे समाधि पूरी आस।	43
--	----





साई बाबा का पाँचवा वचन
मुझे सदा जीवित ही जानो, अनुभव करो सत्य पहचानो। 51



साई बाबा का छठा वचन
मेरी शरण आ ख़ाली जाए, हो तो कोई मुझे बताये। 61



साई बाबा का सातवाँ वचन
जैसा भाव रहा जिस जन का, वैसा रूप हुआ मेरे मन का। 69



साई बाबा का आठवाँ वचन
भार तुम्हारा मुझ पर होगा, वचन न मेरा झूठ होगा। 77



साई बाबा का नवाँ वचन
आ सहायता लो भरपूर, जो माँगा वह नहीं है दूर। 83



साई बाबा का दसवाँ वचन
मुझ में लीन वचन-मन-काया, उसका ऋण न कभी चुकाया। 91



साई बाबा का ग्यारहवाँ वचन
धन्य-धन्य वह भक्त अनन्य, मेरी शरण तज जिसे न अन्य। 101





भूमिका

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में **श्रद्धा** और **सबुरी** बेहद आवश्यक हैं, और सद्गुरु साईनाथ महाराजजी के भी तो यही दो मूलमंत्र हैं। श्रद्धा और सबुरी - श्रद्धा यानी विश्वास और सबुरी यानी सब्र। श्री साई के मूल ग्रंथ श्री साई सच्चरित्र में इन दो मंत्रों पर विशेष जोर दिया गया है।

श्री साईनाथ महाराजजी के जीवन चरित्र पर आधारित श्री साई सच्चरित्र पावन ग्रंथ अथाह सागर के समान है जिसमें जितने भी गोते लगायें जायें कम है। इस ग्रंथ की गहराई को नाप पाना असंभव है। जितनी भी बार इस ग्रंथ को पढ़ा जाये, हर बार उसमें कुछ नया संदेश या उपदेश मिलता है। श्री साई सच्चरित्र के प्रत्येक शब्द पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। ज़रूरत है, उस पंक्ति-उस शब्द को अच्छी तरह से पढ़ने की, उसे अच्छी तरह समझने की क्योंकि प्रत्येक में गूढ़ रहस्य, गूढ़ अर्थ छिपा होता है।

श्री साई सच्चरित्र पर ही आधारित बाबा ने अपने भक्तों को ग्यारह वचन दिये, जिन पर भक्त पूर्ण विश्वास करते हैं कि बाबा के कहे यह ग्यारह वचन शत्रु-प्रतिशत्रु सही हैं। बाबा ने यदि अपने इन वचनों में भक्तों को पूर्णतः निश्चिन्ता प्रदान की है - तो साथ में कुछ शर्तें भी लगा दी। इनके गूढ़ महत्व को समझ पाना बहुत मुश्किल है परंतु जब आप बाबा के साथ रू-बरू हो जाते हैं, जब आप पावन





ग्रंथ श्री साई सच्चरित्र को अपने जीवन का एक आधार बना लेते हैं, आपके रोम-रोम में साई का वास हो जाता है। तभी आप बाबा के दिये ग्यारह वचनों का सही मायने में अर्थ समझ सकते हैं।

भोपाल निवासी श्री सुमीत पोंदा 'भाईजी' की गिनती बाबा के चुनिंदा अनन्य भक्तों में होती है जिन्होंने बाबा के ग्यारह वचनों की बखूबी व्याख्या की है। मात्र दो लाईन के एक वचन को श्री सुमीत पोंदा 'भाईजी' ने इतना बखूबी वर्णित किया है कि कोई साधारण सा भक्त भी उसका अर्थ आसानी से समझ सकता है। प्रत्येक वचन की विस्तार से व्याख्या उन्होंने श्री साई सच्चरित्र में उल्लेखित प्रसंग अथवा बाबा के उपदेशों का उल्लेख करते हुये की है। बाबा के ग्यारह वचनों का बहुत ही सुन्दरता से वर्णन किया है। श्री सुमीत पोंदा 'भाईजी' को भी यकीनन इन गूढ़ वचनों का अर्थ समझने में कई वर्ष लगे होंगे। श्री सुमीत पोंदा 'भाईजी' पिछले करीब छः-सात वर्षों से देश के अलग-अलग राज्यों में अपनी मधुर वाणी द्वारा संगीतमय "श्री साई अमृत कथा" से श्री साई बाबा के पावन वचनों, संदेशों-उपदेशों का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। बाबा के संदेशों को जन-जन तक पहुँचाने का असधारण कार्य कर रहे है। श्री सुमीत पोंदा जी ने सोशल मिडिया के द्वारा भी देश-विदेश के असंख्य साई भक्तों तक अपनी पहुँच बनाई है।

उच्चतम शिक्षा प्राप्त श्री सुमीत पोंदा जी अपने व्यस्त कार्यक्रमों में से समय निकाल कर श्री साईबाबा के लेखन का कार्य करते रहते हैं। "सबके जीवन में साई-बातें एक फकीर की" उनकी रचना प्रकाशित हो चुकी है। श्री साईबाबा संस्थान ट्रस्ट शिरडी सहित देश-विदेश की अनेक संस्थायें श्री सुमीत पोंदा जी को सम्मानित कर चुकी हैं। शिक्षा के क्षेत्र में श्री सुमीत पोंदा जी के सराहनीय योगदान के लिये राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कई पुरस्कारों से नवाज़ा गया है। उनकी नवीन रचना "साई वचन-बाबा के ग्यारह वचनों का सार"



प्रकाशित की जा रही है, जो कि निश्चित रूप से भक्तों के लिये वरदान साबित होगी और इस रचना को पढ़कर भक्तजन बाबा के जीवन चरित्र और शैली को विस्तार से जान पायेंगे। इस रचना की भाषा बहुत ही सरल व भावपूर्ण है, जो भी भक्त इस रचना को पढ़ेगा उसके हृदय में निश्चित रूप से बाबा के प्रति प्रेम जागृत होगा। श्री सुमीत पोंदा जी पर बाबा का विशेष सात्रिध्य है और उनकी कार्य शैली से प्रभावित होकर मुझे एक मशहूर शायर का शेर याद आ रहा है, जो कि पोंदा जी पर पूरी तरह से चरितार्थ होता है :

तुम शोर-शराबे से हंगामा न बनो,
बन जाओ रात का सन्नाटा।
जो धीरे-धीरे बढ़ता है
और पूरी दुनिया पर छा जाता है।

मैं इस अनुपम कृति के लिये श्री सुमीत पोंदा जी को हृदय से शुभकामनायें देता हूँ। श्री साईनाथ महाराज जी से प्रार्थना है कि वह श्री पोंदा जी को इसी प्रकार रचनायें लिखने के अनन्तप्रेरणा देते रहें। इसी साधुवाद के साथ, सादर।

ॐ साई राम...

—गोगी चांदना
संपादक, साई लीला टाइम्स



प्रस्तावना

इन वचनों को कुछ यूँ समझें...

श्री साई बाबा बहुत ही सरल और सहज देव हैं। उनकी पूजा-आराधना का कोई निश्चित विधान नहीं है। उन्होंने तो किसी से कभी अपनी पूजा करने तक को नहीं कहा। किसी ने उनके चरणों में अथवा माथे पर चंदन लगाने की इच्छा की तो मान गए। किसी ने फूल अर्पण किये तो ग्रहण कर लिए। किसी ने कुछ पंक्तियाँ लिख कर दे दी तो उसे आरती के रूप में गाने की अनुमति मिल गई। अपने लिए तो उन्होंने कभी किसी से कोई वस्त्रार्पण भी नहीं करवाया। फटे कपड़ों में ही रहते और मौज में रहते। कभी कोई गहने नहीं स्वीकार किये। राधाकृष्णमाई ने अन्य भक्तों से कह कर यदि हाथी जड़ी चाँदी की पालकी की व्यवस्था की और जब उसको रखने के लिए मस्जिदमाई में कोई जगह न होने के कारण बाहर ही रख दिया गया और कोई चोर उसके हाथी निकाल कर ले गए तो उसका भी उन्होंने शुक्र मनाया। वो कभी भी इस पालकी में बैठे नहीं। वो तो इस पालकी के साथ-साथ चलते। अगर इस पालकी उत्सव में वो तात्या के कहने पर ज़रीदार चोगा पहन भी लेते तो अंदर तो वही फटी कफनी रहती। पालकी के चावड़ी पहुँचने पर जब शेजारती गाई जाती तो वे ज्ञानदेव और तुकाराम द्वारा रचित अभंग गाये जाने पर स्वयं खड़े हो कर ईश्वर और इन संतों के प्रति अपनी आदरांजलि व्यक्त करते। कभी पादुकाएँ पहनते और कभी ऐसे ही भिक्षाटन को निकल पड़ते। जो भी रूखा-सूखा मिलता उसे प्रेमपूर्वक अल्प मात्रा



में ग्रहण कर लेते। स्वयं अपने हाथों से उदी का प्रसाद बाँटते। साईं तो हर दिखावे और आडम्बर से दूर रहे और अपने भक्तों को किसी भी कर्मकाण्ड के झमेले से दूर रखा। उन्होंने तो सदा माना कि मन ही में ईश्वर का वास होता है। साईं का मानना था कि अगर मन में ईश्वर नहीं है तो कहीं भी नहीं है।

इन दिनों जो भी पूजन विधि शिर्डी में देखने में आती है वह श्री साईं बाबा के समय से भिन्न है और इतने वर्षों के अनुसंधान के पश्चात पंढरपुर में भगवान् पंढरीनाथ की पूजन-विधि से प्रेरित है। समय-समय पर *दासगणु महाराज*, *मोहिनीराज पण्डित*, *माधव अडकर*, *बलवंत देव*, *उपासनी महाराज* और *कृष्णराव रागेश्वर भीष्म* द्वारा रचित आरतियाँ और अभंग भीष्म द्वारा सूचीबद्ध कर **श्री साईनाथ सगुणोपासना** संकलित की गई। यही संकलन आज शिर्डी में बाबा की पूजन विधि को परिभाषित करता है।

बाबा के समाधि लेने के बाद उनके ग्यारह वचन साईं के भक्तों के लिए बाबा से साक्षात्कार का अनुभव देते हैं। इन्हें दोहराना उनकी सरलतम पूजन विधि सदृश है। प्रतिदिन काकड़ आरती के पश्चात इन ग्यारह वचनों को समाधि मंदिर में बजाया जाता है। बाबा के यह ग्यारह वचन, जो कि इस किताब का आधार हैं, मोहिनीराज पण्डित द्वारा रचित माने जाते हैं। मोहिनीराज मालेगाँव के शासकीय अधिकारी थे और नासिक के मामलतदार के रूप सेवानिवृत्त हुए। सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने श्री साईं बाबा संस्थान के प्रकाशन विभाग में अपनी सेवाएँ दीं। बाबा की आरती में गाये जाने वाला **नमस्काराष्टक** 'अनंता तुला ते कशे रे स्तवावे, अनंता तुला ते कशे रे नमावे...' की रचना का श्रेय इन्हीं मोहिनीराज को जाता है।

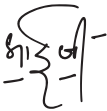
यह स्पष्ट है कि उन्होंने दाभोलकर द्वारा साईं कृपा और अनुमति से रचित श्री **साईसच्चरित्र** के 1923 में प्रकाशन के बाद इन्हीं में से बाबा के द्वारा स्वयं कहे वचनों को संकलित किया है। श्री साईं सच्चरित्र के विभिन्न अध्यायों में से इन वचनों को लिया गया

है। यह स्पष्ट नहीं है कि इसके लिए बाबा की कोई प्रत्यक्ष अनुमति उनके द्वारा ली गई थी अथवा नहीं लेकिन यह तो स्पष्ट है कि बाबा की अनुमति के बिना यह संभव नहीं होता कि कोई ग्यारह वाक्य दोहराना करोड़ों लोगों के जीवन का आधार बन पाता।

सुनने में भले ही यह ग्यारह वचन बहुत ही सरल सा अर्थ देते हैं लेकिन बाबा के शब्द बहुत गूढ़ और गहरे होते थे। उनके प्रत्येक शब्द में जीवन का सारतत्त्व समाया होता था। मैं पिछले कोई 35 वर्षों से इन वचनों को प्रतिदिन दोहराता आया हूँ और हर बार यह सरल वाक्य मुझे विस्मित कर देते थे कि कैसे संभव है कि कोई इनको दोहराकर आनंदित हो जाता है। लेकिन यह सत्य है कि इन वचनों को दोहराने से मन को असीम शांति मिलती है। और यह भी उतना ही सत्य है कि इन वचनों में जीवन को समृद्ध कर स्थायित्व देने की शक्ति भी है जो साई का वैशिष्ट्य है।

इस पुस्तक के माध्यम से बाबा ने इन ग्यारह वचनों का सार और विस्तार अपने भक्तों के लिए करवाया है जिन्हें पढ़ कर, आशा है कि, सभी भक्तों को बाबा के और पास पहुँचने का अनुभव मिलेगा। इन ग्यारह वचनों की व्याख्या, इस पुस्तक की रचना, अपने आप में किसी चमत्कार से कम नहीं है। जब भी इन ग्यारह वचनों के सार और विस्तार का पठन किया तो अपने आप को आश्चर्यचकित पाया क्योंकि जो कुछ भी इस पुस्तक में समाहित है, चाहे वो शब्द हों या भाव, वो सहज रूप से न तो मेरे मुख से निकलना और न ही मेरी कलम से उत्पन्न होना संभव है। यह साई का एक और चमत्कार है।

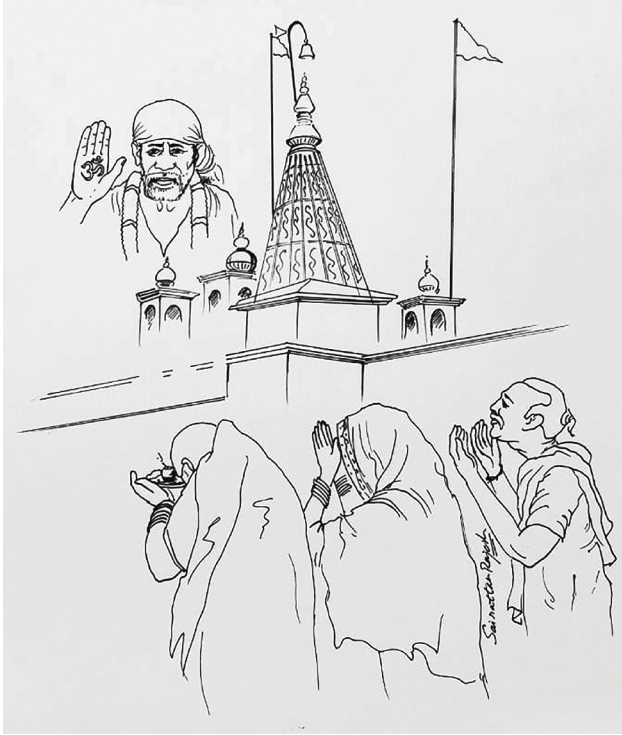
साई का, साई को... बाबा भली कर रहे...



सुमीत पौदा 'भाईजी'

• साई बाबा का पहला वचन •

जो शिर्डी में आएगा,
आपद दूर भगायेगा।





यह वचन साई का उद्गार भी है और आश्वासन भी। यह वचन साई बाबा के भक्तों की अध्यात्मिक उड़ान में सबसे महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहीं से उसके तन से प्रारम्भ हो रही शिर्डी की यात्रा अंतिम वचन तक पहुँचते-पहुँचते मन की यात्रा बन जाती है। शिर्डी को वह अपने मन के अंदर पाता है।

अपने फ़ायदे के लिए साई के दर पर हर बार जाकर माँगने और माँगने से अधिक पाने वाला आम भक्त, जब माँगते-माँगते थक जाता है और जब साई देते-देते नहीं थकते, तब वह साई से वो सब कुछ माँगने लगता है, जो साई उसे हमेशा से ही देना चाहते थे, लेकिन जो वह लेने के लिए कभी तैयार ही नहीं था। **श्री साई सच्चरित्र के अध्याय 32 में साई कहते भी तो हैं, “भेरे सरकार का खज़ाना भरपूर है और वह बह रहा है। मैं तो कहता हूँ कि खोदकर गाड़ी में भर कर ले जाओ। जो सच्ची माँ का लाल होगा, उसे स्वयं ही भरना चाहिए।”** ये कौन-सा खज़ाना है, जो साई हमेशा से ही अपने भक्तों को देना चाहते हैं? **खज़ाना से साई का अर्थ आध्यात्मिक भंडार से है, जो हमारी आँखों के सामने तो होता है, लेकिन हम ही उसे हेय मानते हैं।**

आपदाएँ या विपरीत परिस्थितियाँ जीवन का एक अभिन्न अंग हैं। जीवन सुख-दुःख, खुशी-ग़म, अच्छे-बुरे, ग़लत-सही जैसी परिस्थितियों का सम्मिश्रण है। **हर दिन एक जैसा नहीं होता। अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर चलती ही रहती हैं।** कर्म के सिद्धांतों की बात करें तो यह भी स्पष्ट हो ही जाता है कि अच्छी और बुरी, दोनों ही परिस्थितियाँ इंसान के ही कर्मों का फल होती हैं। **श्री साई सच्चरित्र के अध्याय 32 में साई**



आगे कहते हैं, “जो कुछ भी कोई करता है, एक दिन उसका फल उसको अवश्य प्राप्त होगा और जो मेरे इन वचनों को याद रखेगा, उसे भौतिक आनन्द की प्राप्ति होगी।” अच्छे के बदले अच्छा होता है और बुरे के बदले बुरा अनुभव मिलता है। कर्म करने को इंसान स्वतंत्र है।

जब तक कर्म नहीं हुआ है, तब तक कर्म इंसान का गुलाम है, लेकिन एक बार जब कर्म हो गया, तब इंसान कर्म का गुलाम हो जाता है। किये हुए कर्म का फल उसे भोगना ही पड़ता है। कर्म के फल का निर्धारण कर्म की प्रबलता और तीव्रता पर निर्भर करता है। फल का निर्धारण उस अदृश्य शक्ति के हाथों में है, जिसे हम ईश्वर कहते हैं। उसके न्याय की रीत निराली है। कर्म से किन्हीं परिस्थितियों में भी छुटकारा नहीं है।

जीवन मिला है, इसलिए कर्म करना है और चूंकि कर्म होते हैं इसलिए उन्हें भोगना, उनका फल भोगना हमारी मजबूरी है। जो कर्म अभी हुए नहीं हैं और जिनके हम मालिक हैं, वे **क्रियमाण कर्म** कहलाते हैं। जो कर्म हमारे द्वारा हो चुके हैं, लेकिन जिनका फल निर्धारण अभी नहीं हुआ है, वो **संचित कर्म** कहलाते हैं। जो कर्म हो चुके हैं और जिनके फल का निर्धारण भी हो चुका है और जो हमें भोगने ही हैं, वे **प्रारब्ध** कहलाते हैं। प्रारब्ध में जिन कर्मों के फल असुखकारी हैं, उन्हें आपदा समझा जाता है। वो नरक हो जाते हैं। इनके विपरीत जो कर्म अच्छे फल ले कर फलीभूत होते हैं वो स्वर्ग की अनुभूति देते हैं।

जब कोई यह पहला वचन पढ़ता है, तो उसे सहज ही यह महसूस हो उठता है कि उसकी सारी आपदाएं शिर्डी में आते ही समाप्त हो जायेंगी। लेकिन क्या इस वचन का महज इतना-सा ही अर्थ है? **श्री साईं सच्चरित्र के अध्याय 25** में दामू अन्ना कासार के बाबा को पूछे सवाल से इसका जवाब मिल जाता है। दामू ने बाबा



से पूछा था कि जो सभी जन बाबा के दर्शनों के लिए शिर्डी आते हैं, क्या उन सभी को लाभ पहुँचता है? इसके जवाब में बाबा ने कहा, “बौर लगे आम के वृक्ष की ओर देखो। क्या सभी बौर आम में तब्दील हो जाते हैं? कुछ बौर तो अपने आप झर जाते हैं और जो बचते हैं उनमें से भी कुछ आंधी के झकोरों से नष्ट हो जाते हैं और उनमें से कुछ ही शेष रह जाते हैं।”

इस वक्तव्य से बाबा का क्या अभिप्राय था? मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि जब शिर्डी जाने वाले हर व्यक्ति को वहाँ आकर फ़ायदा ही न हो तो क्यों कोई शिर्डी आएगा? बाबा के कथन को अगर समझने की कोशिश करें तो समझ में आता है कि **किसी का भी शिर्डी आना किसी बौर के आम बनने जैसा ही तो है।**

कहा गया है कि ईश्वर की याद विपदा के समय ही आती है। विपदा टल जाने पर आमतौर पर इंसान ईश्वर को भूल जाता है। ऐसे अवसरवादी को दुःख फिर ढूँढ ही लेता है या ऐसा इंसान खुद ही अपने दुःख को ढूँढ लेता है। जो आनंद के समय भी ईश्वर को याद करते रहते हैं, उन्हें दुःख तो आ सकता है, लेकिन दुःख उन्हें दुःखी नहीं करता। ऐसे ही शिर्डी की यात्रा शुरू करने से पहले ही कई भक्तों का मन बदल जाता है और वह शिर्डी पहुँच ही नहीं पाते। मन की अल्हड़ प्रवृत्ति चित्त को भटका देती है। इनमें से कुछ अगर शिर्डी पहुँच भी जाते हैं, तो भी उनमें से कई तो केवल तन से शिर्डी में होते हैं। उनका मन तो भटकता ही रहता है। कोई नौकरी के बारे में सोचता है, तो कोई व्यापार और परिवार के बारे में। फ़ायदे-नुकसान के घट-जोड़ में लगा मन, उस तन को भी शिर्डी में ठहरने नहीं देता। भटकता मन, इनके तन की शिर्डी में उपस्थिति को नगण्य कर देता है। इन बौरों में तो आम बनने के गुण होते ही नहीं।

जैसे कुछ बौर स्वयं ही झर जाते हैं, वैसे ही शिर्डी आने वाले कुछ भक्त तुरंत ही अपनी समस्या का समाधान नहीं मिलने के कारण



अपने आप शिर्डी आना छोड़ देते हैं। उन्हें शायद इस बात का आभास ही नहीं होता है कि हर समस्या का समाधान तुरंत ही नहीं मिल जाता। साई से चमत्कारों की उम्मीद रखने वालों को इस बात का ज्ञान ही नहीं होता है कि चमत्कार साई नहीं करते, बल्कि साई में हमारी श्रद्धा साई को चमत्कार करने के लिए मजबूर करती है और यह रातों-रात नहीं होता। किसी भी शक्ति पर भरोसे को विश्वास में, विश्वास को आस्था में और आस्था को श्रद्धा में बदलने में समय लगता है। आस्था और श्रद्धा के रास्ते में तर्क खड़ा नज़र आता है।

आस्था और तर्क दोनों एक ही दिशा में साथ-साथ चलते हैं, लेकिन कभी रेल की पटरियों की तरह मिलते नहीं। दोनों में होड़ रहती है। तर्क, आस्था को आगे बढ़ने नहीं देता और आस्था, तर्क को परास्त करना चाहती है। तर्क, विवाद को जन्म देता है और आस्था, विश्वास को। तर्क, कारण ढूँढता है और आस्था, कारण से परे नए आयाम ढूँढती है। तर्क, मन को कमज़ोर करने का काम करता है तो आस्था, विश्वास को दृढ़ करती है। तर्क, चमत्कारों को नकारता है। चमत्कार आस्था को नमन करते हैं। तर्क, सत्य की खोज में लगा रहता है। आस्था, सत्य का ही रूप है। तर्क, दिशा देता है तो आस्था गति। तर्क, अशांत करता है, तो आस्था, शांति देती है। तर्क, मायूस करता है और आस्था, उल्लास से भर देती है। साई में आस्था हो तो तर्क ठहरता ही नहीं, क्योंकि साई तर्कों से परे हैं। साई को खोजना है, तो तर्कों से परे जाकर ही खोजना होगा।

शिर्डी श्रद्धा है, तो साई में भक्ति सबुरी यानी सन्न है। आस्था शिर्डी यानी श्रद्धा का रास्ता खोलती है। अगर हमें चमत्कार नहीं दिख रहा है, तो कमी साई में नहीं, बल्कि हमारी श्रद्धा में ही है। साई तो देने को तैयार बैठे हैं। लेने वाले में लेने की क़ाबिलियत तो हो। लायक़ात होने पर ही इच्छा फलीभूत होती है। जो बौर इस क़ाबिलियत के साथ आस्था की राह पकड़ लेते हैं, उनके आम बनने



में एक बाधा और कम हो जाती है। लेकिन अभी भी भक्ति की मासूम टहनी से उनका रिश्ता कच्चा ही रहता है। ज़रा सब्र तो कर, प्यारे!

जैसे ऐसे कमज़ोर रिश्ते से चिपके कुछ बौर तेज़ हवाओं और अंधड़ में झर जाते हैं, वैसे ही कुछ और भक्त मोह और लालच के चलते साईं को खो देते हैं। कुछ वैमनस्यता और इर्ष्या के अंधड़ में साईं से दूर हो जाते हैं। कामेच्छा की प्रबलता मन को साईं में टिकने ही नहीं देती। मन की ग्रंथियों के तूफान में ये बौर भी भक्ति की मासूम टहनी में टिक ही नहीं पाते और झर जाते हैं। अब जो बच जाते हैं, वे आम बनने की राह में बढ़ जाते हैं।

शिर्डी का पुरातन नाम 'शिलधी' है। समय के साथ 'शिलधी' के अपभ्रंश के रूप में अधिक आसान, शिर्डी प्रयुक्त होने लगा। साईं बाबा की अष्टोरशत नामावली में पाँचवे क्रम स्थान पर बाबा का एक नाम **“गोदावरीतट शिलधीवासिनैः”** बताया गया है। गोदावरी के तट पर बसी शिलधी का वासी! 'शिलधी' की अगर दो हिस्सों संधि-विच्छेद में कर देते हैं, तो "शिला+धी" बनता है। 'शिला' का एक अर्थ मेरु या पहाड़ भी होता है और 'धी' का अर्थ ज्ञान हुआ।

स्थान का बल प्रधान होता है। इस प्रकार से शिर्डी का बल भी प्रधान हुआ। हमारे शास्त्रों में अधिकांश देवी-देवताओं का स्थान ऊंची जगहों पर ही होता है। इस अर्थ से शिर्डी भी एक पहाड़ हुई। वो पवित्र, पावन, ऊंचा और अडिग पहाड़, जिसने देविदास, जानकीदास, आनंदनाथ, कई सूफ़ी यायावर, इत्यादि कई संतों को और बाद में, संतों के संत, परमहंस श्री साईंनाथ को अपनी ओर खींच लिया। शिर्डी में कोई तो चुम्बकीय तत्त्व है जिसने इतने संतों के तप से पाए पुण्य को अपने अन्दर समाहित कर रखा है।

शिर्डी जाना या शिर्डी में आना किसी मेरु या पहाड़ पर चढ़ने के बराबर ही होता है, जहाँ से दुनिया एक अलग रूप में, लेकिन छोटी नज़र आती है और नज़रें दूर तक देख सकती हैं। दृष्टिकोण



बदल जाता है। जहाँ हवा शुद्ध और ताजी होती है, लेकिन अंतर को कपकपां भी देती है। उसके वेग के सामने पैर जमा कर खड़ा होना भी चुनौतीपूर्ण होता है। इस जगह सूर्य का प्रकाश अधिक ऊर्जावान, लेकिन उसका निर्दयी ताप और अधिक पास होता है और वैसे ही चंद्रमा की शीतलता भी पास, लेकिन जड़ कर देने वाली होती है। तारों की टिम-टिमाहट साफ़ दिखती है, लेकिन उनकी नीरसता मन को उदास कर देती है।

इस पहाड़ पर चढ़ना आसान नहीं होता। चढ़ाई एकदम खड़ी है। बिलकुल सीधी। पैर जमाने को कोई जगह नहीं। पकड़ने को कोई सहारा नहीं। दम भरने लगता है और साँस फूलने। शिर्डी में साई तक पहुँचने के लिए कई कड़ी परीक्षाएं देनी होती हैं। आराम करने रुके तो मन के विचार नीचे की गहराई देख कर चक्कर खाने लगते हैं।

श्री साई सच्चरित्र के अध्याय-2 में दामोदरजी को गुरु की महत्ता समझाने के लिए बाबा ने ऐसी ही ऊँचाई पर पहुँचने के लिए ऐसे ही रास्ते का जिक्र किया है। पथ-प्रदर्शक के साथ होने से हाँफते, गिरते-पड़ते, दुरूह, कठिन और काटों भरे रास्तों से होकर, जीव-जंतुओं से बच कर जो ऊपर पहुँच जाता है, उसे अज्ञान यानी आपदाओं से मुक्ति मिल जाती है। वो ऐसी जगह पहुँच जाता है, जहाँ पर दुःख दुःखी कर निराश नहीं करता और जहाँ मन सुखी होने पर निरंकुश होकर उड़ान नहीं भरता।

दृष्टिकोण बदलने से ममता की जगह समता का भाव उत्पन्न हो जाता है। साई की ऊर्जा का तेज अपने चेहरे पर नज़र आने लगता है और वहीं उसकी चाँद जैसी शीतलता ओज बढ़ा देती है। साई की आँखों के तारों की चमचमाहट नए ब्रह्मांडों, जीवन में नए आयामों की खोज का रास्ता खोलती है। भटकते हुए मन को रास्ते और मंज़िल दोनों ही नज़र आने लगते हैं।



साई के साथ होने से उनकी साँसों के सुगन्धित झोंके जहाँ पर नयी आशा का संचार करते हैं। यहाँ मन के विकार रूप बदल लेते हैं। काम शास्त्रोक्त हो जाता है। क्रोध अपनी कमजोरियों पर आने लगता है। लोभ साई के चरणों का होने लगता है। साई की भक्ति की मस्ती का रंग चढ़ जाता है। यह शिर्डी है जहाँ आपदाएँ निकल भागने का रास्ता खोजती हैं। कर्मों के प्रतिकूल प्रभाव सद्गुरु साई के श्रीचरणों में जाने से क्षीण पड़ने लगते हैं।

भाव बदलने से विचार और विचारों में परिवर्तन से कर्मों में बदलाव होने लगता है। क्रियमाण कर्म अच्छे होने से उनका प्रभाव भी बदल जाता है। संचित कर्मों के फल का स्वरूप बदलने लगता है। प्रारब्ध को झेलने की शक्ति मिलती है। साई के ताप से कर्मों का स्वरूप बदलने लगता है।

सोने को तपाने पर वह कुंदन बन जाता है। उसकी मिलावट, अशुद्धता उसके तप कर लाल हो जाने पर दूर हो जाती है। वैसे ही शिर्डी वो स्थान है, जिसे साई ने दो अलग-अलग पड़ावों में कोई 63-64 वर्ष तक अपने तप और ताप से प्रबल किया। जहाँ उन्होंने मानवता की परिभाषा को साफ़ कर उस पर से धूल हटा दी। धर्म और अधर्म का भेद बताया। जहाँ साई ने न जाने कितनों की ही तकलीफें दूर की, और जिनका प्रारब्ध उनके सुख के आड़े आ रहा था, साई ने उनके दुखदायी अहसासों को हर लिया। यहाँ साई ने लोगों के जीवन में आशा की नयी किरण जगाई और यहीं साई ने अपनी अनवरत जलती धूनी की राख से मुर्दों को भी जीवनदान दिया।

शिर्डी वह जगह है, जहाँ की मिट्टी में अनगिनत भक्तों की आशा का केंद्र बन चुके साई का पंचतत्वों से बना शरीर विश्राम कर रहा है, वहाँ की मिट्टी से एकाकार हो चुका है। साई शिर्डी बन चुके है या शिर्डी साई हो चुकी है, यह भेद करना नामुमकिन है। जिस



मिट्टी की ऊर्जा साई के नाम में बसी हुई है, उस शिर्डी में आपदाएँ कहाँ ठहर सकती हैं। ज़रूरत है तो साई में बिना शर्त समर्पण की। यही शिर्डी आने की शर्त है और योग्यता भी।

शिर्डी में आकर आपदा उन्हीं की दूर होती है, जो आस्था की मुश्किल राह पर चलते हुए श्रद्धा के रूप में साई को पाने की ख्वाहिश रखते हैं। शिर्डी में बैठे, साई पूरे विश्व में अपने भक्तों की आपदाएँ हटाने का काम सहज ही करते हैं। साई तक पहुँचने में यही पहला पड़ाव सबसे अहम भी है और मुश्किल भी।

❁ बाबा भली कर रहे... ❁

श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।



• साई बाबा का दूसरा वचन •
चढ़े समाधि की सीढ़ी पर,
पैर तले दुःख की पीढ़ी कर।





यह वचन साई का परोपकारी वचन है। पहला वचन यदि साई की राह में किसी भक्त की यात्रा की शुरुआत है, तो यह दूसरा वचन साई के शरणागत को एक नयी ऊँचाई पर ले जाता है। इस भक्त को साई के और करीब ले कर आता है। किसी भी साई-भक्त की साई यात्रा में साई की समाधि की यह पहली सीढ़ी अति-महत्त्वपूर्ण है।

अगर इस वचन को थोथे शाब्दिक रूप से समझा जाए, तो साई की समाधि की सीढ़ी पर पैर रखने या चढ़ने-मात्र से ही भक्तों के दुखों का नाश हो जाना चाहिए। ऐसा हो भी जाता है। विश्वास हमेशा फलीभूत होता है। यह आश्रित के कर्मों और भक्त की भक्ति पर निर्भर करता है कि साई की समाधि की ड्योढ़ी पर पैर रखते ही दुखों का नाश हो जाता है या दुःख कम हो जाते हैं या फिर बिलकुल ही कम नहीं होते। किसी को भी अपने ऊपर पैर रखने देने के पूर्व यह समाधि के स्थान पर सीढ़ी कड़े इम्तिहान लेती है। भक्त की भक्ति की परीक्षा और उसके कर्मों का लेखा यहीं पर परखे जाते हैं।

इस वचन की महत्ता को समझने के लिए यह समझना होगा कि समाधि क्या है? चढ़ना क्या है? चढ़ने वाले की योग्यता क्या होना चाहिए? दुःख क्या हैं? दुःख पैरों तले कैसे आयेंगे?

समाधि मन, तन और चित्त की वो एक अवस्था है, जिसमें भूत, वर्तमान और भविष्य - तीनों एक साथ, एक ही स्थान पर, 'अभी' और 'यहीं' संजोये रहते हैं। जो कुछ भी होता है, वो बस 'अभी' और 'यहाँ' होता है। जिसने 'समय' पर नियंत्रण पा लिया, उसने 'तब' और 'कब' पर विजय प्राप्त कर 'अब' को पा लिया। इसी तरह, जिसने 'स्थान' पर काबू पा लिया, उसने 'कहाँ' और



‘वहाँ’ पर विजय प्राप्त कर ली, उसने ‘यहाँ’ को जीत लिया। साई के साथ सब कुछ ऐसा ही था। वो समय और स्थान से परे लोगों को उबार लेने का काम करते थे और आज भी कर रहे हैं। दरअसल, समाधि अवस्था योग की सर्वोच्च स्थिति है, जिसमें समय और स्थान निर्मूल हो जाते हैं। सभी कुछ एक साथ, एक ही जगह, एक ही समय पर घटित होता है।

यह अवस्था शारीरिक ताप-संताप, इच्छाओं-वासनाओं से परे है। इस अवस्था में शरीर, दूसरे के रोगों को अपनी भी इच्छा से हर भी लेता है और नष्ट भी कर देता है। **श्री साई सच्चरित्र के अध्याय 7** में उल्लेखित है कि बाबा ने दादासाहेब खापर्डे के पुत्र के प्लेग की गांठे अपने शरीर पर ले ली थीं। यह भी माना जाता है कि बाबा ने अपनी इच्छा से बायजामाई के बेटे तात्या का रोग हर कर उसके स्थान पर उसकी मृत्यु को अपना लिया था (**श्री साई सच्चरित्र, अध्याय 42**)।

समाधि अवस्था में मन काम, क्रोध, इर्ष्या और अहंकार से रिक्त रहता है। यह अवस्था मन की आकांक्षाओं, अपेक्षाओं, आशंकाओं, उपेक्षाओं, मान-अपमान, स्वाभिमान-अभिमान, राग-द्वेष से परे है। नानावल्ली द्वारा बाबा को अपने आसन से हटा देने पर भी बाबा का सहज रहना इस बात का परिचायक है कि बाबा में लेशमात्र भी अभिमान नहीं था और न ही वह इस बात से आहत हुए थे। वे इस अपमानजनक कृत्य पर भी सहज और शांत ही रहे थे। शिर्डी के दुकानदारों द्वारा उन्हें मस्जिद में दिए जलाने के लिए जब तेल देने से मना कर दिया गया था और जब बाबा ने जल से ही दीपक जलाये थे, तब भी उन्होंने उन दुकानदारों को कोई श्राप या सज़ा नहीं देते हुए केवल समझाइश ही दी थी कि किस तरह से उनका झूठ बोलना न सिर्फ उनके अपने व्यक्तित्व के लिए नुकसानदेह है, बल्कि उन्होंने झूठ बोलकर उस खुदा की शान में खिलाफत की



है जिसकी इबादत में वो दीपक जलाये जाने थे। साई ने हमेशा लोगों को सुधारने का काम बिना किसी हथियार और सज़ा के किया है और आज भी कर रहे हैं। अपने जिस कठिन समय को लोग भगवान की सज़ा मानते हैं, वो तो दरअसल, उनके अपने कर्मों का ही फल होता है। यह शाश्वत सत्य है कि कर्म बिना फल दिए शांत नहीं होता।

बरसों-बरस लग जाते हैं, तब समाधि की स्थिति में आ पाना संभव हो पाता है। योगावस्था का चरम है समाधि। योग का अर्थ ही है, 'चित्तवृत्ति निरोधः' यानी जिसमें चित्त की वृत्ति थम जाये। समाधि अवस्था में चित्त अपनी मूल वृत्ति के विपरीत एकदम स्थिर रहता है, भटकता नहीं है। स्व-केन्द्रित न होकर चित्त परोपकार के भाव से भर उठता है। इसीलिए तो साई की शरण में जाकर अपने पापों के कटने का अहसास मन को होता है। जीवन सरल बन जाता है।

श्री दाभोलकर रचित श्री साई सच्चरित्र को पढ़ कर समझ में आता है कि साई बाबा में समाधि के गुण सदैव विद्यमान थे। वे चलते-फिरते, सोते-जागते सदैव समाधि अवस्था में ही रहते। वे अपने आपको सदा ईश्वर का आज्ञाकारी सेवक ही मानते; जैसा कि श्री साई सच्चरित्र के अध्याय 34 में उल्लेखित है। बाबा ने शामा से कहा, "जो निरभिमान होकर अपने को तुच्छ समझ कर उन (ईश्वर) पर पूर्ण विश्वास करेगा, उसके कष्ट दूर हो जाएँगे और उसे मुक्ति की प्राप्ति होगी।"

जो मुक्त है, वही सच्ची समाधि में है। शरीर, मन और चित्त की यह स्थिति, ईश्वर का अखंड स्मरण करने से, उसके अस्तित्व में बिना शर्त समर्पण कर और सम्पूर्ण ब्रह्मांड को उसकी सत्ता मान कर आचरण करने से ही संभव है। यही कारण है कि साई जब सदेह थे, तब भी सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सर्वोपरि थे और आज जब वो भौतिक देहधारी नहीं हैं, तब भी इन्हीं गुणों को परिलक्षित करते दिखते हैं।



सदेह रहते हुए वे अपने पास आने वाले भक्तों का भूत, वर्तमान और भविष्य सदा ही बता देते थे। इसके लिए उन्हें कभी किसी का न तो हाथ देखने की जरूरत ही थी और न ही किसी की जन्मकुंडली उन्होंने देखी हो ऐसा हुआ था। न कोई रमल विद्या और न ही कोई कर्ण-पिशाचिनी विद्या उनके पास थी। उनका ध्यान इतना प्रगाढ़ था कि जागृत अवस्था में वे किसी का भी आज, गुज़रा हुआ और आने वाला कल बिलकुल सटीक बता देते थे। लोगों को आने वाली विपदाओं के प्रति आगाह करते, जैसे कि उन्होंने दामू अन्ना को उसकी लालच से भरे अनाज और रुई के सौदों (**श्री साई सच्चरित्र, अध्याय 25**) के प्रति आगाह कर किया था। इस सौदे को अपनी ज़िद के मुताबिक कर दामू को भारी घाटा हुआ होता। इस और इस जैसी अन्य घटनाओं से सिद्ध होता है कि साई बाबा को **भविष्य के बारे** में न सिर्फ बिलकुल ठीक-ठीक पता होता था, बल्कि वे अपनी शरण में आने वालों को अनिष्ट से बचा लेते थे। इसी तरह उन्होंने भीमाजी पाटिल के पूर्व जन्मों के पापों को काट कर उन्हें तकलीफदेह क्षय रोग से मुक्त किया था (**श्री साई सच्चरित्र, अध्याय 13**)। कई अन्य घटनाओं से स्पष्ट होता है कि बाबा को अपनी शरण में आने वालों के **पूर्व के घटनाक्रम** और क्या कर्म उनको तकलीफ पहुंचा रहे हैं, के बारे में सब कुछ साफ-साफ पता रहता था। जैसे उन्होंने बापूसाहेब बूटी के साथ आये अग्निहोत्र ब्राह्मण और ज्योतिष-शास्त्र में पारंगत मुले शास्त्री को उनके गुरु श्री घोळप स्वामी के रूप में दर्शन दिए थे (**श्री साई सच्चरित्र, अध्याय 12**)। यह घटना बाबा के **वर्तमान को** पढ़ने की क्षमता के बारे में बताती है। ऐसे ही कई किस्से आते हैं, जहाँ पर बाबा ने अपनी त्रिकालज्ञता का परिचय दिया है।

श्री साई सच्चरित्र में बाबा ने आश्वस्त किया है कि **उनकी समाधि उनके भक्तों से बातें करेंगी, उनकी रक्षा करेगी और इस**



तरह से साई बाबा के पास होने का अहसास सदा उनके भक्तों को होता रहेगा। उनके पास होने का भास सदा ही उनके भक्तों को होता रहता भी है। क्या साई की समाधि उनसे अलग है? क्या साई, यह नश्वर देह छोड़ने के बाद अपनी सारी शक्तियां अपनी समाधि को देकर कहीं किसी और रूप में, किसी और स्थान पर चले गए हैं? उन्होंने अपनी समाधि को अपने से अलग क्यों बताया? साई ने जब इस देह से जीते जी मोह नहीं रखा, तो इस नश्वर तत्व को वे समाधीस्थ होने के बाद क्यों कर्ता बताते? सर्वज्ञ साई अब अपनी समाधि के साथ-साथ समस्त जग के अनंत स्वरूप में मिल गए हैं, निराकार हो गए हैं, तब शिर्डी स्थित उनकी समाधि उनके इस धरा पर उपस्थिति की प्रतीक स्वरूप सगुण भक्ति को बल दे रही है।

संतों के स्वधाम गमन को उनका समाधीस्थ होना माना गया है। साई भी तो एक संत थे, जिन्हें ईश्वर-प्रदत्त शक्तियां परोपकार के लिए मिली थीं। संत कौन होते हैं? श्रीमद् भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि संत ईश्वर का ही स्वरूप होते हैं। स+अंत = संत। जो अपना अंत साथ में लेकर चलते हैं, वो संत माने जा सकते हैं। अपना अंत यानी अपनी भौतिक इच्छाओं का अंत, जो साथ में लेकर चले, वो संत होता है। सदेह रहते हुए भी भौतिक इच्छाओं का अंत, संतों को अदम्य शक्ति देता है। स्वयं पर काबू पाने की शक्ति। यही शक्ति जीते जी उनको परमार्थी बना देती है और देह त्याग के बाद समर्थ, परमहंस। परमहंस यानी वो श्वेत, बेदाग पंछी, जिसे सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा का वाहन भी माना जाता है, जो जितना पानी में रहता है, उतना ही पानी के बाहर भी। यह विभूतियाँ भी इसी तरह इस धरती पर रहते हुए भौतिकता से दूर और आध्यात्मिकता के अन्दर रहती हैं और परम आध्यात्मिक ऊंचाइयों को प्राप्त कर चुकी होती हैं। ऐसे ही परमहंस हैं साई बाबा जो न सिर्फ खुद के



आध्यात्मिक उत्थान के लिए कार्यरत थे, बल्कि खुद पर आश्रितों के लिए भी सतत चिंतित रहते हैं।

ऐसे परमहंसों की समाधि की सीढ़ी चढ़ने के लिए यानी उनके पास तक जाने के लिए भक्त या आश्रित का स्वयं मन का साफ़, शुद्ध और बेदाग़ होना चाहिए। यदि पूर्व में किसी के दिल दुखाने वाले कार्य किये हों तो उनका प्रायश्चित्त भी करना होगा और न कर पाने की स्थिति में, उसका संकल्प तो होना ही चाहिए।

सुख की चाह और दुःख सहना, इसी से उत्पन्न होने वाली संवेदनशीलता इंसान को इंसान रहने देती है। कर्म का सिद्धांत है कि हर कर्म से कोई दुःखी होता है, तो कोई सुखी। किसी एक का दुःख किसी दूसरे का सुख बन ही जाता है। और तो और, जो अहसास आज किसी को सुख देता है, वही अहसास कल उसी को दुःखी भी कर सकता है। इंसान कर्म से पार नहीं पा सकता और कर्म, सुख-दुःख के झूले से। कर्म इंसान करता है और अपने दुःख के लिए दोष ईश्वर को देता है।

दुःखी तो इस दुनिया में सभी हैं। ऐसा कोई घर नहीं है, जहाँ पर दुःख न हो। कोई शरीर से तो कोई धन से दुःखी है। कोई रिशतों से तो कोई परिस्थितियों से। कोई रोटी के लिए तरसता है, तो कोई उसे हजम करने के लिए तड़पता है। कोई बहुत नींद आने से परेशान रहता है, तो कोई रात-रात भर जाग कर परेशान होता है। साइकिल वाला इसलिए परेशान है कि उसके पास गाड़ी नहीं, तो गाड़ी वाला इसलिए परेशान है कि गाड़ी में घूमने के कारण से उसका वज़न बढ़ गया है और उसे कम करने के लिए वो साइकिल चलाता है। दुःख के मूल में इच्छाओं का वास होता है और इच्छाएँ मृत्यु-पर्यंत ख़त्म नहीं होती। और होनी भी नहीं चाहिए, क्योंकि इन्हीं दुःख देने वाली

इच्छाओं के जरिये आध्यात्म के रास्ते खुल जाते हैं। आध्यात्म यानी खुद को पा लेने की अवस्था। समाधि की अवस्था। बहुत कम लोग इस तक पहुँच पाते हैं।

दुःख तीनों काल में अपना एक विशिष्ट स्वरूप लिए होता है। भूतकाल की किसी बात का शोक हमें हमेशा सालता रहता है। कोई अपमान, कोई अप्रिय घटना या फिर कोई पराजय; हम इन्हें दिल से लगाकर रखते हैं। यह भूल जाते हैं कि अगर किसी ने हमारा अपमान एक बार भी किया है, तो उस अपमान को रोज़-रोज़ याद करके हम स्वयं को प्रत्येक दिन अपने हाथों अपमानित करते ही रहते हैं। एक बार की पराजय को दिल से लगा कर बैठे होते हैं, लेकिन यह भूल जाते हैं कि वो तो सिर्फ़ एक बुरा दिन था। दिन बुरा होने से जीवन बुरा नहीं हो जाता। उसे रोज़ याद कर हम रोज़ पराजित होते रहते हैं। ऐसा ही उन अप्रिय घटनाओं के साथ होता है, जिनका दंश हम पालते रहते हैं और उन्हें पोषित भी करते हैं।

वर्तमान का मोह भी दुःख का ही एक रूप है। धन-संपत्ति का मोह हमें उसका आनंद ही नहीं लेने देता। हम चैन से नहीं बैठ पाते। और धन कमाने की जुगत में उस आज को भी खो देते हैं, जो किसी भी संपत्ति से अधिक मूल्यवान है। उन रिश्तों को भी ताक पर रख देते हैं, जिनका जीवित रहना हमारे लिए साँस का काम करता है। जीवन में रिश्ते तो रह जाते हैं, लेकिन रिश्तों में जीवन ख़त्म हो जाता है। संतान के प्रति मोह हमें उसके भले की सोचने नहीं देता। रिश्तों को निभाने की जुगत में हम अपनों को अपने से इतना सटा लेते हैं कि उनका भी साँस लेना दूभर हो जाता है और हमारा भी। अख़बार ठीक से पढ़ने के लिए हमेशा एक निश्चित दूरी होना ज़रूरी है। आँखों के बहुत पास होने से अक्षर पढ़ने में नहीं आते। हमें अपना रुतबा भी बहुत प्यारा होता है। उसे निभाने के

लिए हम अपने चेहरे पर झूठ के इतनी परत चढ़ा लेते हैं कि खुद से मुलाकात होने पर खुद को भी पहचान नहीं सकते। मोह मारता है।

भविष्य का भय, आज को डरावना बना देता है। आज जो कुछ भी हमें साई की कृपा से मिला है, उसके छिन जाने का डर हमारे सारे व्यक्तित्व को मटमैला कर देता है। जीवन के शांत पानी में भविष्य के भय का पत्थर फेंक कर हम नीचे का मैल ऊपर ले आते हैं; और उस पानी को दूषित कर देते हैं। और मजे की बात तो यह है कि अंत में समझ आता है कि जीवन में हमारे अधिकांश भय निर्मूल, बेकार के ही सिद्ध होते हैं। ये निराधार ही होते हैं। हमारे मन की अँधेरी उड़ान का परिणाम होते हैं - भय, लेकिन यह हकीकत जीवन की सांझ में ही समझ आती है, जब बहुत कुछ सुधारा नहीं जा सकता।

गुजरे हुए कल का शोक, वर्तमान का मोह और भविष्य का भय, ये तीनों हमें सुख, शांति और आनंद से दूर ही रखते हैं। यह सभी के साथ होता है। अपने और अपनों के लिए ही जी-जी कर हम भूल चुके होते हैं कि सुख, शांति और आनंद को पाने का सबसे आसान रास्ता होता है - परोपकार का। दूसरे को सुख देने की असीम शांति में हमारे सारे शोक घुल जाते हैं, मोह खो जाते हैं और भय हवा हो जाते हैं। परोपकार का भाव हमें एक सीढ़ी ऊपर चढ़ा देता है। यही सीढ़ी उस साई की समाधि की पहली सीढ़ी है जहाँ पर कोई भी नकारात्मक भाव ठहर ही नहीं सकते, क्योंकि परोपकार का रास्ता साई के पास ही लेकर जाता है।

परोपकार ही साई की पहचान है। खुद फटे कपड़ों में रहते, लेकिन दूसरों को अपने एक बोल से निहाल कर देते, करुणामयी नज़रों से हमें तार देते, ओढ़ी हुई फकीरी को होठों की मुस्कान तले दबाकर रखते, भिक्षा लेते तो बदले में दुआओं का भण्डार खोल देते, दक्षिणा माँगते तो वर्षों पुराने बोझ से मुक्ति का दान दे देते, भक्ति



लेकर अभयकारी उदी को मुक्तहस्त से माथे पर लगा देते। किस्मत का लेखा और सितारों की चाल साई बदल देते हैं। यह शक्ति उनको परोपकार करने के बदले मिली है!

साई की समाधि की सीढ़ी पर चढ़ने की इच्छा हमेशा परोपकार की भावना के साथ होनी चाहिए। यही इस सीढ़ी पर चढ़ने की आवश्यकता है, और योग्यता भी। दूसरों के लिए साई से माँगी हुई दुआ किन रास्तों से, कितनी गुणा शृंगारित और संपन्न होकर वापस हमारे ही पास आती है, इस बात का अहसास अगर हमें हो जाए तो हम कभी अपने लिए साई से दुआ माँगेंगे ही नहीं। दूसरों का अच्छा करो। इससे जो दुआ निकलती है, वो कर्मों के फल को भी पिघला देती है।

इस सीढ़ी पर अपने लिए माँगेंगे तो भी मिलेगा, लेकिन उतना ही जितना हम उठाने का सामर्थ्य रखते हो, लेकिन जब हम दूसरे के लिए खुशियाँ माँगेंगे तो साई न सिर्फ हमें हमारी हैसियत से ज्यादा देगा, बल्कि हमारे सामर्थ्य को बढ़ा भी देगा। हमारा दुःख, सुख में बदल जाएगा। मर्जी हमारी है। साई की समाधि की सीढ़ी हमारे बोझ उठाने को तैयार है। पहला कदम हमें ही रखना होगा। यहाँ ज़िन्दगी को समझेंगे, तो समझेंगे कि खुशी से रो देना और ग़मों में मुस्कुराना ही जीवन है। तब दुःख कदमों के नीचे होंगे।

❀ बाबा भली कर रहे... ❀

श्री सदगुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।



• साई बाबा का तीसरा वचन •

त्याग शरीर चला जाऊंगा,
भक्त हेतु दौड़ा आऊंगा।





बाबा का यह तीसरा वचन अभयकारी वचन है। इसे पढ़ने वाले को सहज ही डर से मुक्ति मिल जाती है। इस वचन को समझना है तो पहले यह समझना होगा कि क्या सिर्फ शरीरधारी होने से ही साई का अस्तित्व था?

साई तो हमेशा ही शरीर के परे थे। उनका शरीर तो मात्र एक नश्वर ज़रिया था, इस धरती पर लोगों से संपर्क बना कर उन्हें बेहतर इंसान बनने की ओर अग्रसर करना और लोगों को अभयत्व देने वाले नाम - साई - को स्थापित करने का। यह उद्देश्य पूरा होते ही साई ने देह छोड़ कर पुनः अनंतता को ओढ़ लिया और उस परमशक्ति में फिर से समा गए जिसका दास वो खुद को कहा करते।

आज साई सदेह नहीं हैं, लेकिन आज भी उनका नाम और उनका काम, उनके भक्तों को पूर्ण संरक्षण दे रहा है। साई का यह वचन आज भी दोहराते हुए उनके भक्तों की आँखों में पानी भर आता है, शरीर रोमांचित हो उठता है और साई के प्रति अनुग्रह उनमें आत्म-विश्वास का संचार कर देता है। साई ने इस वचन के माध्यम से अपनी अखंड उपस्थिति के प्रति अपने भक्तों को आश्वस्त किया है। यह वचन भक्त के आवेगशील मनोभावों को नियंत्रित करता है, उसकी हृदयगति को नियमित करता है और संवेदनाओं को जागृत करता है।

15 अक्टूबर, 1918 मंगलवार के रोज़, दशहरे के पावन दिन दोपहर के कोई 2.30 बजे बाबा ने अपनी नश्वर देह छोड़ कर समाधि का वरण कर लिया था। उनकी देहोत्सर्ग की इस क्रिया को ऐच्छिक भी माना जा सकता है, क्योंकि उन्होंने तात्या पाटिल की मृत्यु अपने ऊपर ले कर उन्हें जीवन-दान दे दिया था।



इससे लगभग 35 वर्ष पूर्व दिसंबर, 1887 में भी बाबा ने तीन दिन की एक छोटी ऐच्छिक समाधि ली थी। तब भी शिर्डीवासियों ने पहला दिन ही ढलते-ढलते ये मान लिया था कि बाबा अब लौट के नहीं आयेंगे, लेकिन ये तो बाबा का नामकरण करने वाले और उनके प्रथम भक्त म्हालसापति चिमनाजी नागरे की दृढ़ इच्छा-शक्ति का ही परिणाम था, जो बाबा का सर अपनी गोद में लेकर बैठे थे, कि उन्होंने शिर्डी के लोगों और प्रशासन के आगे झुकने से मना कर दिया था और बाबा के वापस आने की तीन दिन की समयावधि तक उन्होंने किसी को भी बाबा को हाथ लगाने नहीं दिया था। धन्य हैं वो भक्त म्हालसापति! यदि उन्होंने दबाव में आ कर लोगों को बाबा की देह की अंतिम क्रिया करने की बात मान ली होती तो बाबा के असली रूप, उसका माहृतम्य जानने और उनकी लीलाओं को देखने से हम सभी लोग वंचित रह गए होते। तीसरे दिन की समयावधि समाप्त होते-होते बाबा के शरीर में प्राण लौट आये थे, जैसा कि उन्होंने समाधि लेने से पूर्व म्हालसापति को इंगित कर ही दिया था।

अपनी इच्छा से प्राणों को शरीर से अलग कर लेने और फिर उन दोनों को अपनी मर्जी से जोड़ने वाले साई की देह त्यागने की क्रिया को भला साधारण रूप से कैसे लिया जा सकता है? **श्री साई सच्चरित्र के अध्याय 7** में साई की यौगिक क्षमताओं के बारे में पढ़ कर स्पष्ट हो जाता है कि साई बाबा का अपने मन और शरीर पर अद्भुत नियंत्रण था। उनका ब्रह्मचर्य हनुमान के सदृश अखंड था और अपने संपर्क में आने वाली सारी महिलाओं को हमेशा बहुत ही मर्यादित नज़रों से देखते। कभी भी किसी की नज़रों में सीधे नहीं देखते। सभी महिलाओं को वे माई (माँ) कह कर ही संबोधित करते। वे कभी खण्डयोग कर अपने शरीर के सारे अंगों को अलग-अलग कर फिर जोड़ देते, तो कभी धौति-क्रिया के माध्यम से अपने पेट की सारी अतडियाँ निकाल कर, उन्हें कपड़े से साफ़ कर पेड़ों की



टहनियों पर सूखने को डाल देते थे और फिर उन्हें वापस अपनी जगह लगा लेते थे। वो एक हथेली चौड़े और तीन हाथ लम्बे लकड़ी के पटिये पर चारों कोनो पर दीपक लगा कर उसे फटी हुई चिंदियों से लटकाकर उस पर ऐसे सोते कि कौतुकी लोगों को वे केवल उस पटिये पर सोते दिखते न कि चढ़ते और उतरते। वे रात में सोते तो म्हालसापति को कहते कि ध्यान रखना कि कहीं सोते में उनके हृदय में भगवत्स्मरण बंद न हो जाए। जिस साई को अपने शरीर और इन्द्रियों पर इतना नियंत्रण हो वह कैसे मृत्यु का ग्रास बन सकता है? वह तो इच्छा-मृत्यु का ही वरण कर सकता है। ऐसी मृत्यु, जिसमें सिर्फ़ उनका शरीर निष्प्राण हुआ हो, साई तो अखंड, सतत और अनवरत् हैं। मृत्यु ने साई का शरीर नहीं हरा था, बल्कि साई ने शरीर को त्यागा था, जो साई के लिए कतई कटिन नहीं था।

शरीर में आसक्ति, उसको त्यागा जाना मुश्किल कर देती है। जिस व्यक्ति की शरीर में ही आसक्ति हो, उसके लिए शरीर त्यागना दुखदायी होता है। इसे त्यागना उसके लिए कटिन होता है, जो या तो शरीर को ही जीवन मानता हो और शरीर के होने या न होने को जीवन के न होने जैसा समझता हो। साई तो त्याग की प्रतिमूर्ति थे। न धन-संपत्ति का संग्रह, न जीभ में कोई स्वाद का लालच, न महिलाओं में कोई आसक्ति और न ही किसी प्रकार की अन्य वासनाएँ। साई तो त्याग को ही जीते थे या कहें कि साई ने जीवन भर त्याग को ही जिया।

उनका अपने शरीर के प्रति कोई मोह था ही नहीं। न तो वे तो इस शरीर को संवारते थे और न ही कभी कपड़ों या आभूषणों में उनकी दिलचस्पी ही रही। वे कई-कई दिनों तक स्नान भी नहीं करते, लेकिन मन की पवित्रता से हर समय उनके चेहरे पर एक अजीब ही नूर रहता। फटे कपड़ों में रहकर भी उन्होंने लोगों के उधड़े हुए भाग्य को सिलने का काम किया। बिना फर्श की मस्जिद में ज़मीन पर बैठ-बैठे भी उन्होंने लोगों के पत्थर जैसे मन को कोमल किया।



धूनी के सामने बैठकर झुलसते हुए तन को परमार्थ में लगाया। ऐसा पावन शरीर त्यागने में भी उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई। जीवन, प्राण, शरीर भ्रम है। हमारे दर्शन में भी लिखा है कि शरीर को जीवित रखने वाली आत्मा, जो कि इस शरीर की ऊर्जा है, वह तो शाश्वत, अमर, अटूट और अटल है।

श्री साईं सच्चरित्र के अध्याय 8 में मानव जीवन के महत्त्व को दर्शाते हुए उल्लेख है कि अलग-अलग योनियों में जन्म लेते-लेते जब इस आत्मा के पुण्य और पाप का समन्वय हो जाता है तो मानव जन्म का अवसर मिलता है। इसी जन्म में आकर पापों और पुण्यों को जलाने का अवसर भी मिलता है, जो आत्मा को मोक्ष देकर परमात्मा के अन्दर विलीन कर देता है।

परमात्मा, अंशी है और हम उसके अंश। हम उसी का रंग-रूप, उसी की छाँव-धूप हैं। हम एक बूँद है, तो वह सात समुन्दर। वो पर्वत है, तो हम कंकड़। हम निर्बल हैं तो वो बलवान, लेकिन वो हरपल हमारे साथ ही होता है। हम उसी शक्ति का सुर-संगीत हैं और उसी के गीत गाते हैं। बस मुसीबत तब होती है कि हम उसके गीत गाते-गाते, अपने शब्द, सुर, ताल और लय बिगाड़ लेते हैं। जब हमारे शब्द, सुर, लय, ताल बिगड़ने लगते हैं, तब हमारे कर्मों का स्वरूप भी बिगड़ने लगता है। हमें समझ लेना चाहिए कि हम परमात्मा के प्रेम और भाईचारे के मूल सिद्धांत से दूर होते जा रहे हैं और अब हमारे पापों के रास्ते का सफ़र प्रारंभ हो चुका है। हम तनाव में रहने लगते हैं। चैन नहीं पाते। उखड़े-से रहते हैं। तब सद्गुरु की ज़रूरत पड़ती है।

पाप और पुण्य को जलाने का रास्ता सद्गुरु के चरणों में ही मिलता है, जो अपने शिष्य को उसके तमाम अवगुणों और कमियों के बावजूद अपनाकर उसे अपने मूल, परमात्मा से मिलाने का कार्य करता है। साईं बाबा ऐसे ही सद्गुरु हैं, जिन्हें कोई देवता, कोई भगवान या फिर अवतार कहते हैं।



मनुष्य का जन्म अपने कर्मों के चलते होता है, जबकि देवता करूणावश अवतार लेते हैं। जब-जब भी मानवता गुमराह हो जाती है तो वो परम शक्ति, जिसे हम ईश्वर, अल्लाह या फिर गॉड कह कर पुकारते हैं; कभी राम, तो कभी कृष्ण, जीसस, पैगम्बर, नानक, बुद्ध, महावीर तो कभी ज़रथुश्त्र और अन्य का अवतार लेकर इस धरा पर जन्म लेती है और अपना-अपना काम कर, अपनी पावन देह से धरती को पवित्र करने के उद्देश्य से यहीं छोड़ स्वधाम चली जाती हैं।

जहाँ भी इनकी देह विश्राम करती है या फिर जिस जगह भी पंच-तत्वों में विलीन हो जाती है, वहाँ पर धाम बन जाता है। लोग उस पार्थिव देह की पवित्रता की चुम्बकीय शक्ति से खिंचे उस धाम पर आते हैं और अपने मन को खोल कर रख देते हैं। इनकी देह की निर्मलता, शुचिता और शुद्धि, किसी भी स्थल को देवालय के जैसा कर देती है। ठीक इसी तरह साई बाबा की शक्ति और पवित्रता से सिंचित पवित्र देह ने शिर्डी को भी पवित्र धाम बना दिया है, जहाँ लोग पैरों में बंधी डोर से चिड़ियों की भांति खिंचे चले आते हैं। बदले में साई भी अपने भक्तों के लिए हर जन्म में दौड़े चले आते हैं कभी सत्य की राह दिखाने तो कभी पापों को जलाने, कभी गले से लगाने तो कभी उनको सांत्वना देने। हमेशा। हर जन्म में।

श्री साई सच्चरित्र में कई सारे किस्से आते हैं, जब बाबा ने भक्तों को उनके पूर्व जन्मों का हाल कह सुनाया। एक बार जब बाबा ने स्कूल मास्टर शामा के गाल पर चिमटी ली तो शामा ने बनावटी रोष दिखाते हुए उनसे कहा कि हमें तो ऐसा देव चाहिए जो हमें रोज़-रोज़ नया खाने को दे, अच्छा-अच्छा पहनने को दे और हमारा खयाल रखे। बाबा ने तपाक से कहा कि **इसीलिए तो मैं आया हूँ। मेरा और तेरा 72 जन्मों का रिश्ता है।** ऐसा ही बाबा ने जिलाधीश के निज सहायक नानासाहेब चांदोरकर को अपने पास बुलावा भेजा और कहलवाया कि उनका और बाबा का तो तीन जन्मों का नाता



है। श्रीमती खापर्डे के कई जन्मों का वृत्तान्त बताते हुए बाबा ने उनके हाथों से बना खाना खाया। पूर्व जन्म में जायदाद को लेकर एक-दूसरे को मार डालने वाले दो भाई जब इस जन्म में बकरे के रूप में उनके पास आये तो बाबा ने उन्हें मोल लेकर घास भी खिलाई। सांप के मुंह से मेंढक को बचाने पर बाबा ने उन दोनों, वीरभद्रप्पा और चैनबसप्पा, के ही कई सारे पूर्व जन्मों की कथा भी सुनायी। बाबा ने यह भी बताया कि कैसे उन्होंने हर जन्म में उस मेंढक की रक्षा की है। धुरन्धर भाइयों से बाबा ने अपना साठ जन्मों का रिश्ता बताया।

साई का अपने भक्तों से रिश्ता जब बन जाता है, तो वो फिर हमें अपनी छात्र-छाया से दूर नहीं होने देते। साई इतनी आसानी से रिश्ता बनाने भी तो नहीं देते थे। कितनी ही बार होता था, जब कोई इच्छा के बावजूद शिर्डी नहीं आ पाता था, तो कोई शिर्डी आकर भी मस्जिद की सीढियां नहीं चढ़ पाता था। बाबा की मर्जी के बगैर कोई भी उनके करीब नहीं आ सकता था। बाबा किनको अपने पास आने से रोकते थे? पद, पैसे और खानदान के अहंकार से भरे लोगों को बाबा सख्त नापसंद करते। जैसे कि हाजी सिद्दीक फाल्के, जिन्हें अपनी हज यात्रा का बहुत अभिमान हो गया था। धन के लोभी लोगों की भी बाबा के दरबार में कोई जगह नहीं थी। जैसे वो बनिया जो ब्रह्मज्ञान लेने बाबा के पास आया था, लेकिन बाबा की माया के जाल में ऐसा उलझा कि उस समय जब बाबा को सिर्फ पांच रुपयों की ज़रूरत थी और उसकी जेब में ढाई सौ रुपये होने के बावजूद वो नहीं दे पाया। मेघा जैसे भक्त, जिसकी मृत्यु पर बाबा ने भी आँसू बहाए थे, पर बाबा उस पर पहले-पहल नाराज़ हुए थे, जब उसके मन में बाबा के यवन होने का भाव था। बाबा ने कालान्तर में उसकी भक्ति को बढ़ाया ही। नानासाहेब चांदोरकर को बाबा ने संरक्षण तो दिया, लेकिन जब एक सुन्दर मुस्लिम महिला को देख उनके मन में वासना के भाव उत्पन्न हुए तो बाबा ने बड़े ही प्रेम से समझाकर उन



भावों को दूर धकेल दिया और चांदोरकर को ग्लानि-मुक्त कर दिया। शिर्डी से मीलों दूर पंढरपुर के एक वकील ने जस्टिस तात्यासाहेब नूलकर के बाबा में विश्वास को लेकर मज़ाक उड़ाया था और जब वही वकील सालों बाद बाबा के पास दर्शन के लिए आया तो बाबा ने उसे दुत्कार दिया था। जो जुबान किसी के विश्वास की निंदा करे ऐसी बोली बोलने वाले भी बाबा को सख्त नापसंद थे।

ऐसा नहीं था कि बाबा किसी को भी अपने पास आने से रोकते थे, उनका विरोध तो केवल उन नकारात्मक मनोभावों से था, जिन्हें लेकर ये लोग बाबा के पास आते थे। बाबा का मानना था कि इन भावों के साथ कोई भी उस मस्जिद की सीढ़ियां नहीं चढ़ सकता, जिन भावों में या तो खुद आने वाले का या फिर किसी और का अहित छिपा हो। ऐसे मनोभाव न सिर्फ मनुष्य के अपने व्यक्तित्व को तोड़ते हैं, बल्कि दूसरों के लिए भी हानिकारक होते हैं। जो इच्छाएँ इंसान के ईश्वर को पाने में बाधक हों; वो इच्छाएँ लेकर कोई भी कभी भी बाबा के पास नहीं पहुँच पाया।

जो भी बाबा के शुरूआती भक्तों में गिने गए वे सभी स्वभाव से सरल और धनवान, लेकिन धन-संग्रह में अनासक्ति रखने वाले ही थे। बाबा अकसर गाते, “**फ़कीरी अव्वल बादशाही। अमीरी से लाख सवाई। गरीबों का अल्लाह भाई।**” जिसके पास कोई इच्छा नहीं है, वो बादशाहों की तरह रह सकता है। धन, इंसान की सेवा के लिए है, लेकिन जब इंसान, धन की सेवा करने लगे तो वो धन का सेवक कहलाता है। जिसको धन का मोह ही नहीं है वो बादशाह की तरह रह सकता है।

*चाह गयी, चिंता गयी। मनवा बेपरवाह।
जिनको कुछ न चाहिए, वो शाहन के शाह।*



बाबा का मानना था - धन नहीं धन के प्रति मोह, ईश्वर-प्राप्ति में बाधक है। बाबा ने कभी किसी को धन-संग्रह या संचय करने से नहीं रोका, लेकिन उनका मानना था कि जो भी धन किसी के पास है, वो उसे उसका मालिक न समझे, बल्कि ईश्वर के उस आशीर्वाद के प्रति जिम्मेदार समझे और उस धन से वो धर्म करे, परोपकार करे। धन से धर्मारजन ईश्वर के पास पहुंचा देता है। इस आसक्ति से मुक्ति ईश्वर का रास्ता खोलती है। साई के दर का रास्ता खोलती है। जो अपने आप को सर्वशक्तिमान समझता हो, उसे साई की क्या दरकार?

आज जब बाबा सशरीर हमारे बीच नहीं हैं, तो प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि अब जब इन भावों से युक्त होकर जाने वालों को डांट कर भागने वाला नहीं है और जब साई की मस्जिद और उनके समाधि मंदिर के द्वार सभी के लिए खुले हुए हैं, तब यह कैसे संभव होता है कि साई इन जैसों को अपने पास आने से रोक सकें? इसका जवाब बहुत ही सरलता से दिया जा सकता है कि जब इस प्रकार के लोग शिर्डी पहुँचते हैं, तो उन्हें तब तक बाबा के पास होने की अनुभूति नहीं मिलती, जब तक वे अपनी सारी केंचुल उतार कर बाबा की शरण में न आ जाएँ। जब तक उनमें आतंरिक सुधार नहीं आ जाता, वह साई से तो मिलते हैं, लेकिन उन्हें साई नहीं मिलते। उनमें और मंदिर के बाहर बैठ कर भीख माँगने वालों में कोई विशेष अंतर नहीं होता। ये अन्दर, बाबा के सामने भीख माँगते हैं। बाहर बैठकर माँगने वाला फिर भी बेहतर होता है, क्योंकि वो खुलकर माँग रहा है और ये छुपाकर। हाथ दोनों के ही फैले हैं। दीन दोनों ही हैं। कष्ट में दोनों ही हैं। बाबा के दर से खाली कोई नहीं लौटता। अंतर सिर्फ इस बात का है कि कौन क्या लेकर लौट रहा है।

साई के भक्त तो वो होते हैं, जिन्हें साई से नहीं, साई ही चाहिए होता है। जब साई ही अपने हो गए तो पूरी कायनात अपनी हो जाती है। साई तब आपके हो सकते हैं, जब आप साई के चाहे



अनुसार अपना जीवन रखें। बिना शर्त समर्पण, साई की भक्ति की एकमात्र शर्त है। साई हमेशा ही दौड़े-दौड़े चले आते हैं। केवल साई को याद भर करना पड़ता है। जैसे अपनी जेब में पड़े बटुए की जवाबदारी आपकी होती है, आप उसे सम्हालते रहते हैं। वैसे ही अपनी शरण में आये ऐसे भक्तों को साई हमेशा ही सम्हालते हैं। कई-कई जन्मों तक। हमेशा। पहले साई हमें अपनी ओर खींचते हैं और फिर जब हम उनकी तरह बर्ताव कर, जब उनके जैसे बन जाते हैं, तब साई की वो शक्ति हमारे अन्दर भी आ जाती है। उस लोहे के टुकड़े की तरह, जिसमें चुम्बकीय शक्ति तो है, लेकिन वो सुप्त रहती है, जब तक कि वो दुसरे चुम्बक के प्रभाव में नहीं आती। अब साई हमारी ओर खिंचे चले आते हैं। साई को अपने पास, अपने संरक्षण के लिए बुलाना है, तो पहले साई के बनो। फिर साई को अपना बनाने की सोचो। संभावना पूरी है।

भक्त ही किसी को भगवान बनाते हैं। भगवान के बिना भक्त और भक्त के बिना भगवान अधूरे हैं। दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। परमात्मा के बिन आत्मा और आत्मा के बिन परमात्मा, दोनों ही अधूरे हैं। जैसे जब तुम साई के अंश थे, तो तुम दौड़ते हुए साई के पास जाते थे। तब तुम अपूर्ण थे। तुम्हारे व्यक्तित्व का दूसरा भाग साई के पास था। अब जब साई तुम्हारा अंश, तुम्हारे व्यक्तित्व का हिस्सा बन चुके हैं, तो साई तुम्हारे बिन अपूर्ण हैं। तुम ही साई को पूर्ण करते हो। वे दौड़ते हुए तुम्हारे पास आते हैं। यह साई का आश्वासन है और वचन भी।

बाबा भली कर रहे...

श्री सदगुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।



• साई बाबा का चौथा वचन •

मन में रखना दृढ़ विश्वास,
करे समाधि पूरी आस।





बाबा का यह चौथा वचन भक्तों के जीवन में साई की समाधि के प्रति आस्था को सुदृढ़ करता है। यह वचन आस से आस्था का रास्ता खोलता है।

भक्त अपने अंतःकरण से साई की समाधि को साई का ही विस्तार मानते हुए साई की भक्ति के प्रति और आकृष्ट हो जाता है। उसके अंतःकरण में साई की समाधि के प्रति अगाध आस्था का उदय होने लगता है। साई की समाधि, बाबा के उन वचनों का प्रतीक है जो उनके भक्तों को निराशा के अंधकार की डगर से निकाल कर आशा की पगडंडी पर ले कर आती है।

इस वचन को समझने के लिए पहले समझना होगा कि मन क्या है? दृढ़ विश्वास क्या होता है? आस और आशा क्या होती हैं? आस से आस्था का संचार कैसे होगा? समाधि हमारी आस को कैसे पूरा करेगी?

मन में ही तो साई बसते हैं। साई को हम देवालयों में ढूँढते हैं लेकिन भूल जाते हैं कि हमारा मन ही साई का मंदिर है। हम चाहे किसी भी मज़हब को मानते हो, हमें सिखाया गया है कि देवालय में दाखिल होने से पहले अपने जूते बाहर उतार कर ही अन्दर जाते हैं, जिससे हमारे जूतों पर लगी बाहर की धूल, मिट्टी, गंदगी से देवालय अपवित्र न हो जाए, लेकिन यही बात हम अपने मन के बारे में भूल जाते हैं। बाहर की तमाम गंदगी से सने हुए अपने मद और अभिमान के जूते लेकर हम अपने मन में घुस जाते हैं और उस जगह को गंदा करते हैं, जहाँ पर हमने साई को बिठा रखा है। तन की स्वच्छता का ध्यान तो बहुत रखते हैं, लेकिन मन की स्वच्छता का ध्यान कहाँ रहता है हमें?



इन जूतों के साथ, हम अपने क्रोध की हमें ही जलाने वाली आग, कटुता की हमें ही काटने वाली धार, हमें ही मारने वाला बैर का बीज, खुद को तकलीफ़ पहुंचाने वाली बदले की मंशा, बार-बार हमें अपने ही लक्ष्य से भटकाने वाला लालच, अपनी ही नज़रों में हमें गिराने वाली वासना, हमें झूटे दंभ में रखने वाला हमारा अहंकार और खुद को पहले और दूसरों को बाद में छलने वाली धोखा देने की भावना का कीचड़ भी साथ में लेकर इस मंदिर में आ जाते हैं। क्या कीचड़ में कहीं देवों को सहज देखा है? लेकिन साई तो सबसे अलग हैं!

साई तो उस कीचड़ से सने हमारे मन में रुके रहते हैं और उसे अन्दर ही अन्दर से स्वच्छ भी करते रहते हैं। खुद ही अपने रहने की जगह, हमारे मन, को साफ़ करते हैं। वो तो चाहते हैं कि हम सुधर जायें और स्वभावगत बुराइयों से पार पा सकें। वापस अपने निर्मल स्वरूप में आ जाएँ। हमारा वही स्वरूप मूल है, जो हमें जन्म के समय मिला था। जो चादर हम ओढ़ कर आये थे, वो बिलकुल साफ़ थी। उसमें कोई दाग़ नहीं था। अपने स्वरूप की चादर को हम अपने स्वभाव के मैल से मैला कर लेते हैं। वह स्वभाव, जो हमें बाहर से, समाज और दुनिया से मिलता है। यह जानते हुए भी कि इस कीचड़ में गंद के सिवा कुछ भी नहीं मिलेगा, हम कीचड़ में धँसते ही चले जाते हैं। इस चादर को ओढ़ने के बाद हमें अपने आप से घिन होने लगती है। इसे शर्म के मारे फिर हम अपने नीचे दबा लेते हैं। उसी पर सोने लगते हैं। हम अन्दर ही अन्दर घुटते रहते हैं, दुःखी होते हैं, हमें नींद नहीं आती और खुली आँखों से अपनी ही चादर पर चिंता की करवटे लेते-लेते दुःख की सिलवटें उकेरते रहते हैं। सांसों की आवाज़ कानों में चुभती है। निठाल जिस्म को ढोते-ढोते कब वक़्त से पहले ही हमारा दम निकल जाता है, समझ में नहीं आता।

इसी मैले मन में साई से माँगने के लिए इतना कुछ भर रखते



हैं कि जब माँगने बैठते हैं, तो विचार भावों पर हावी हो जाते हैं। भावों में आस बसती है और विचारों में आशा। भाव हमारे अपने होते हैं। विचार बाहर से आते हैं। भाव साई को चाहते हैं। विचार साई से चाहते हैं। भाव दूसरों का भला चाहता है, जानता है कि दूसरों के भले में ही अपना भला छुपा होता है। विचार स्वार्थ से हवा पाकर वासना की आग को भड़का देते हैं। भाव सरलता चाहते हैं, तो विचार कभी सीधे चलते ही नहीं। भाव मन साधते हैं, तो विचार मन को बहका देते हैं। भाव और विचारों की खींचा-तानी के बीच जब हम साई के पास, कुछ माँगने पहुँचते हैं, तो दोनों की इस रस्साकशी में विचारों से माँग बैठते हैं। साई सब जानते हैं, लेकिन फिर भी मुस्कुराकर हमें वही देते हैं, जो हम उनसे माँगते हैं। वो तो ना कहना जानते ही नहीं हैं। इसी उम्मीद में वो हमें वो सभी कुछ बिना रुके दिए जाते हैं कि हम किसी दिन तो वापस आर्येंगे और उनसे वो माँगेंगे, जो वो हमें देना चाहते हैं। वो हमारे भावों को पढ़ चुके होते हैं।

जैसे-जैसे वो हमें देते जाते हैं, हमारा विश्वास उस साई में बढ़ने लगता है, लेकिन हमारा अहंकार भी इसके साथ-साथ बढ़ा होता जाता है। हम जानते तो हैं कि हमें जो कुछ भी मिला है वह साई ही की कृपा से मिला है, लेकिन इसे मानना बढ़ा ही मुश्किल होता है। हम हैं तो कतरा ही, लेकिन अपने आप को कर्ता मानने लगते हैं। अगर इस बीच हमारी कुछ ऐसी इच्छाएँ पूरी नहीं होती, जिनकी पूर्ति में हमारा ही नुकसान होता, तो हम हताश हो जाते हैं। हमारा विश्वास डोल जाता है। तब फिर साई के ही कर्ता होने का अहसास जाग जाता है।

विश्वास जब हमारी इच्छाओं की पूरी होने पर विकसित होना शुरू होता है तो भरोसा कहलाता है। यह पहली सीढ़ी होती है। यह भरोसा इन्हीं के समान और इच्छाओं की पूर्ति पर पल्लवित होता है



और फिर विश्वास कहलाता है। बस! हम में से अधिकांश यहीं पर रुक जाते हैं। इस विश्वास को दृढ़ होने नहीं देते। उसे आस्था या श्रद्धा में बदलने ही नहीं देते। मन मंदिर बिना आस्था के कुछ भी तो नहीं। मंदिर की तो एक-एक ईंट में आस्था बसती है।

मन की भट्टी में भक्ति की आँच पर इस विश्वास की ईंट को पकाने के लिए इच्छाओं के कोयले को चिता समान सजा कर धैर्य की फुँकनी से हवा देनी पड़ती है। इसी धैर्य को बाबा ने सब्र या सबुरी कहा है।

सबुरी हमें बड़े से बड़े संकटों से तार देती है। मुसीबतों में विश्वास दिलाती है कि सब कुछ ठीक-ठाक होगा। हमें अपने वीर होने का अहसास कराती है और बलशाली बनाती है। विचारों पर काबू करना सिखाती है। हमारे आत्म-विश्वास को मज़बूत बनाती है। दुखों से तार देती है। हमारी अपेक्षा से बेहतर परिणाम हमको दिखाती है।

मन की भट्टी में इच्छाओं के कोयले पर भक्ति की आँच से, सबुरी की फुँक से हमारे विश्वास की ईंट जब पकने लगती है तो इच्छाएँ राख हो जाती हैं। उनका स्वरूप बदल जाता है। इसी राख से बर्तनरूपी जीवन को मांजने पर उसमें चमक आ जाती है। वासना के जीवाणु मर जाते हैं। हाथों का लोभरूप मैल छूट जाता है। माथे पर उस राख को लगाने से रूप में अनासक्ति हो जाती है। राख में न जाने कितने ही गुण छुपे रहते हैं। हम सब जानते हैं, लेकिन स्वभाव की कमज़ोरी के चलते सब भूल जाते हैं। इच्छाओं का स्वरूप बदल जाने पर उनका उपयोग भी बदल जाता है। जहाँ पहले वही इच्छाएँ स्वार्थ के लिए होती थीं, अब परमार्थ के लिए होती हैं। पहले इच्छाएँ बहकाने का काम करती थीं। अब उनकी राख मन को शुद्ध करती है। इच्छाओं का यह बदला रूप हमारा स्वरूप भी बदल देता है।

इस बदले हुए स्वरूप में खुद को पहचानना मुश्किल हो जाता है। इच्छाएँ अब भी होती हैं, लेकिन उनमें वासना का विष नहीं होता।



एक-एक कर के इन ईंटों को अपने मन में सजाना पड़ता है, तब जाकर साई के रहने की जगह बनना शुरू हो पाती है।

शिर्डी में साई की समाधि कोई साधारण समाधि नहीं है। ऐसी ही आस्था की पकी हुई ईंटों से साई की समाधि बनी हुई है। परमात्मा में उनके अटूट विश्वास को जब पकने के लिए उन्होंने अपनी इच्छाओं की भट्टी बना कर मुक्ति की आकांक्षा से प्रज्वलित किया होगा और जब उसे सबुरी की फूँक दी होगी, तब ही उनकी इस समाधि की नींव की ईंट तैयार हुई होगी।

श्री साई सच्चरित्र के अध्याय 43-44, जिसमें बाबा की महासमाधि की यात्रा का विवरण है, को पढ़कर यह जानने में आता है कि उनके आज्ञाकारी सेवक माधव फासले के हाथों अनजाने ही एक ईंट के टूटने पर साई ने उसे अपनी महासमाधि का संकेत यह कहते हुए माना था कि उनकी जीवन-संगिनी चली गयी। हमेशा अपना सर उस ईंट पर रख बाबा सोते और उसे हमेशा बहुत ही सहेज कर रखते। भला कोई ईंट को क्यों सहेज कर रखता? यही श्रद्धा थी, जिसने साई को आस्था का प्रतीक बनाया। इसी श्रद्धा पर बाबा अपना सर रख सोते और इसी को सहेज कर भी रखते। इस तरह इस अमूल्य ईंट को बाबा अपनी जीवन-संगिनी मानते थे। श्रद्धा उनकी जीवन-संगिनी तो थी भी। यही ईंट जब टूट गयी तो साई बाबा को मानो यह आदेश हो गया था कि अब उनकी अटूट श्रद्धा को लेकर उन्हें परमात्मा से फिर एकाकार हो जाना है। साई की उस ईंट के टूटने पर जो कण यहाँ-वहाँ बिखरे होंगे, अणु विस्फोट के समान उससे कई-कई गुणा श्रद्धा उर्जा के रूप में इस विश्व में फैल गयी होगी!

इस ईंट को मूल्यवान धातु से जोड़ कर उनके उपयोग की अन्य वस्तुओं के साथ बाबा की समाधि में भी रखा गया है। आस्था की स्वरूप उस ईंट का प्रारब्ध ही इसी तरह गढ़ा गया था कि उसे



अटूट रह कर साई के साथ और टूटने पर भी सदा साई में मिल कर उनकी समाधि का हिस्सा हो जाना था। उस समाधि में वैसे तो अनेकों ईंटें लगी होंगी, लेकिन इस बहुमूल्य ईंट को तो उस समाधि की नींव होना था।

उस समाधि को, जिसे साई हमेशा ओढ़ कर शिर्डी की गलियों को ब्रहमांड मानकर घूमते रहे और दुनिया भर के लोगों को मुक्ति की राह सुझाई। इसके लिए बाबा ने स्वयं पहले तो उनकी भौतिक इच्छाएँ पूरी की और बाद में मुमुक्षा या मुक्ति का बीज बोया। एक बीज से कितने फल पैदा होते हैं, यह तो बीज की क्षमता से अधिक मिट्टी की उर्वरता या उपजाऊ क्षमता पर निर्भर करता है। ऐसी ही मुमुक्षा की इच्छा तो साई अपने सारे ही भक्तों में उत्पन्न कर देते हैं, लेकिन कितने भक्त मुक्ति पाने की इच्छा रख कर उसे पाने निकल पड़ते हैं, यह हमारे संस्कारों और स्वभाव पर निर्भर करता है। साई के सारे ही भक्त भक्ति की राह पर अपने आप को खोजने निकल नहीं पड़ते। अधिकांश तो बाबा की दी हुई माया में ही उलझ कर रह जाते हैं। कुछ ही इससे आगे निकल पाते हैं।

जो इस राह पर आगे निकल जाते हैं, वो बाबा की समाधि पर पहले तो अपना हाथ रखते हैं, साई को महसूस करते हैं। जो साई की समाधि पर इस तरह से हाथ रखते हैं, उनका प्रारब्ध साई अब अपने हाथों में ले लेते हैं। इनके हाथों में अब साई के हाथों की गर्माहट और नमी महसूस की जा सकती है। यह गर्माहट तमाम मानसिक जंजीरों को पिघला देती है। जब साई के ये दीवाने, साई की समाधि पर अपना सर रख देते हैं, साई की आस्थारूप ईंट से संपर्क में आते हैं, तो उनके कानों में पड़ने वाली उस ईंट पर सर रखकर सोने वाले साई के श्वासोच्छ्वास के ओज से उनकी तकदीरें बदल जाती हैं। साई की प्रत्येक साँस में अल्लाह का ही नाम रहता। अल्लाह का नाम ही अन्दर जाता और अल्लाह का नाम ही बाहर आता।



अब आस का स्वरूप बदल जाता है। वो आशा को अपने अन्दर विलीन कर लेती है। जो पहले भावों में बसती थी, लेकिन विचारों से सुनाई देती थी वो आस अब भावों में ही सुनाई देती है। आस परोपकारी होती है, तो आशा स्वार्थी। आस परिपूर्णता की ओर ले जाती है तो आशा सदा अपना कद बढ़ाती हुई अपूर्ण ही रहती है। आस सदा के लिए होती है, तो आशा रोज़ नया रूप लेकर सामने आ खड़ी होती है। आस संतोषी बनाती है, तो आशा असंतोष उत्पन्न करती है। आस भीड़ से अलग करती है, तो आशा भीड़ में जोड़ देती है। आस विजय का नाम है, तो आशा होड़ का। आशा का विलीन होना और आस का प्रबल होना, यह साई की कृपा से ही संभव हो सकता है।

आशा के लुप्त हो जाने से और आस के बलवान होने से भावों और विचारों का घर्षण समाप्त हो जाता है। मन से भाव, भाव से विचार, विचारों से कर्म और कर्म से प्रारब्ध - सभी एक पंक्ति में आ जाते हैं।

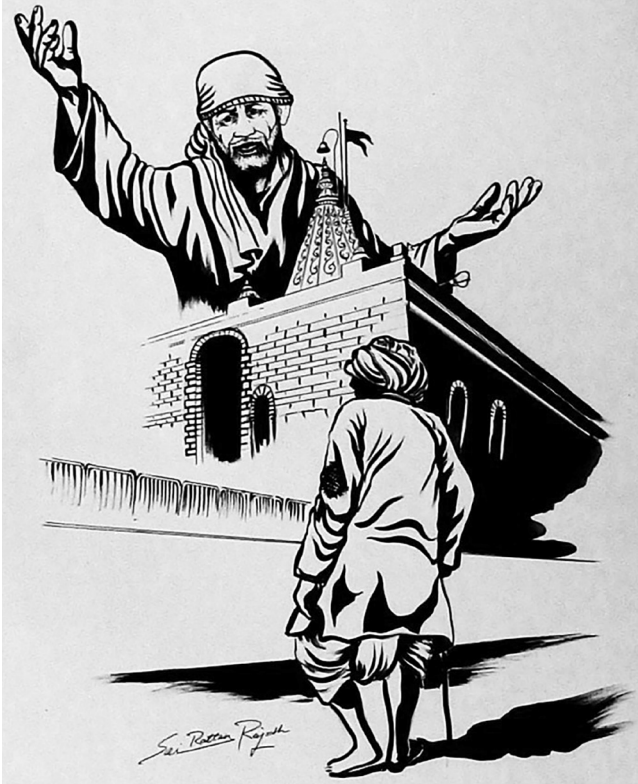
निर्मल मन में साई के प्रति दृढ़ विश्वास, साई की समाधि की वो ईंट, हम सबका प्रारब्ध बदल कर हमारी मुक्ति की आस को पूरा करती है। वो मुक्ति जहाँ पर हम साई से एकाकार हो जाते हैं। हमारा अहंकार साई के चरणों में लीन होकर विलीन हो जाता है और हम साई की दीनता को समेट लेते हैं। हम साई हो जाते हैं। समाधि आस को पूरा करती है। दृढ़ विश्वास रखो।

❀ बाबा भली कर रहे... ❀

श्री सदगुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।



• साई बाबा का पाँचवा वचन •
मुझे सदा जीवित ही जानो,
अनुभव करो सत्य पहचानो।





बाबा का यह पाँचवा वचन साई के सत्य स्वरूप के दर्शन को भावों में पिरो कर साई के भक्तों के जीवन में सत्य की राह खोलता है। सत्य ही नित्य है। निरंतर है। अखंड है। साई ही सत्य हैं। अविनाशी हैं। यह वचन साई के ऐसे ही अविनाशी, अनंत, अखंड और निरंतर स्वरूप से भक्त को रू-बरू कराता है। साई का न तो कोई आदि है और न अंत ही। साई तो सतत्, निरंतर विश्वास का नाम है। इस वचन से साई के भक्त को साई के सत्य स्वरूप का भान होता है। यही सत्य अनुभव करने पर हमारे जीवन में साई के सत्य का प्रकाश दिखने लगता है।

साई को समाधि लिए हुए कोई एक सदी हो गई है। समय-रेखा में साई वर्तमान से बहुत दूर नहीं हुए हैं और इसीलिए हमारे मन की सच्ची आवाज़ सुनकर वो पलट कर मुस्कुरा देते हैं, उत्तर देते हैं। जैसे-जैसे साई और इन जैसी अन्य पवित्र आत्माओं का सफ़र समय-रेखा पर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे हमारी आवाज़ इन तक पहुँचनी धीमी हो जाती है। देर से उन तक पहुँचती है। यह देर हमारे जीवन में जुड़े सत्य के महीन पड़ने से होती है। इन पवित्र आत्माओं के कान तो हमारी आवाज़ सुनने के लिए बेचैन रहते ही हैं। कमज़ोरी तो हम ही में आ जाती है। हमारी आवाज़ में ही आ जाती है।

जैसे-जैसे समय-रेखा पर यह युगपुरुष हमसे दूर होते जाते हैं, हमारे मन पर उनका प्रभाव उनकी अपरोक्ष उपस्थिति के अभाव में कम होने लगता है। हमें देखने वाली कोई नज़र जब दिखाई नहीं देती, तो ऐसा ही होता है! हमारे जीवन में असत्य का प्रभाव बढ़ने लगता है। ऐसा नहीं है कि इन आत्माओं के महत्त्व में कोई कमी आ



जाती है, लेकिन बुद्धि तो प्रमाण माँगती है। होता यूँ है कि जब इन युगपुरुषों के समकालीन हमारे बीच नहीं रहते, तो इनके जीवन-तत्त्व का सत्य पीढ़ियों के झरने में बहते-बहते अपना मूल स्वरूप और दिशा खो देता है। बाद की पीढ़ी वाले कानों सुनी तो अगली पीढ़ी को बता देते हैं, लेकिन मन से जो भाव महसूस किया होता है, वह संप्रेषित नहीं कर पाते। तब इन महापुरुषों की जीवन-गाथा तथ्य कम और कहानी अधिक लगने लगती है। कुछ और समय और कई पीढ़ियों से गुज़रने के बाद, तो यह बातें काल्पनिक-सी ही लगने लगती हैं। इस झरने में बहते हुए, कम होते-होते भाव कहीं खो जाता है। इतना कि अपने इतिहास को ही हम मिथक मानने लगते हैं।

इन जीवन-गाथाओं में अब भक्ति से अधिक युक्ति का समावेश हो जाता है। कुछ किस्सों में बताने वाले की याद्दाशत की सीमितता के चलते, निरंतरता खो जाती है, तो कहीं कुछ काल्पनिक भी जुड़ जाता है, जो असत्य लगता है। कहानियाँ तो रह जाती हैं, लेकिन अब वो मनोमंथन न कर मनोरंजन का साधन हो जाती हैं। थोथे कर्मकांड को धर्म मान लिया जाता है। जब कर्मकांड में भाव न हो, तो वह भक्ति नहीं बन पाता। भावहीन कर्मकांड महज शारीरिक क्रिया तक सिमट कर रह जाता है।

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि भगवान या अवतार बुद्धि का नहीं, अनुभूति का विषय होते हैं। बुद्धि, असत्य का साधन होती है, तो अनुभूति, सत्य का वाहन। अनुभूति को परीक्षा देनी होती है, बुद्धि परीक्षा लेती है। अनुभूति का रास्ता लम्बा और तकलीफ़देह होता है। बुद्धि आरामदायक छोटे रास्ते खोजती है। बुद्धि, युक्ति-प्रधान होती है, तो अनुभूति, प्रेम-प्रधान। अनुभूति, करुणा को जागृत कर देती है, तो बुद्धि करुणाविहीन बनाती है। करुणा ही भक्ति की सुवास है। जब अनुभूति को बुद्धि ढांक लेती है, तो भक्ति कमज़ोर पड़ जाती



है। मन में असत्य का उदय हो जाता है। जितना असत्य बढ़ता जाता है, हमारी आवाज़ उतनी ही क्षीण होती जाती है और इसीलिए समय-रेखा पर लगातार दूर हो रहे इन युगपुरुषों, अवतारों तक नहीं पहुँच पाती है। जब इनके कानों तक हमारी आवाज़ पड़ना कम हो जाती है, तो इन्हें फिर अवतार लेना पड़ता है। हमारे मन के इसी असत्य को साफ़ करने के लिए समय-समय पर परमात्मा हमेशा कोई न कोई अवतार लेकर हमारे उद्धार के लिए अवतरित होते ही हैं।

सत्य-रूप अवतारों का समय-समय पर आगमन सुनिश्चित है। जब भी असत्य का तत्त्व झूठ, फरेब, बेईमानी, दुराचार, वैमनस्य, लोभ, लालच, कदाचरण, अन्याय इत्यादि के रूप में अपना स्वरूप बढ़ाने लगता है, तब-तब इनका नाश करने युगपुरुष अवतरित होते हैं। वे कभी मर्यादा पुरुष राम के रूप में, कभी सारथी बन कृष्ण के रूप में, कभी शांतिस्वरूप महावीर बन, कभी त्याग की प्रतिमूर्ति बन बुद्ध के रूप में, तो कभी परम-शक्ति के निर्गुण स्वरूप का पैगाम लेकर पैगम्बर हज़रत मुहम्मद के रूप में, एकता का पाठ पढ़ाने गुरु नानक के रूप में, बलिदान की मिसाल रखने जीसस क्राइस्ट बन कर, तो कभी इंसानियत का पैगाम देकर झोलियाँ भरने वाले फ़कीर साई बाबा का अवतार लेकर आते हैं। उनका जीवन युगों-युगों तक, हमारे आचरण में बस गए असत्य में से सत्य का अर्क निकाल कर हमारे सामने रख देता है।

सत्य को जब असत्य मान लिया जाता है, तब राम पूजे ज़रूर जाते हैं, लेकिन चरित्र रावण का जिया जाता है। कृष्ण के आगे हाथ जोड़ कर खड़े तो रहते हैं, लेकिन मन में कंस, दुर्योधन और जरासंध से भाव उत्पन्न होते हैं। सलीब के ऊपर जीसस दिखते तो ज़रूर हैं, लेकिन उनकी करुणा को हम आत्मसात नहीं कर पाते। पैगम्बर की बातें तो होती हैं, लेकिन उनके उपदेश तोड़-मरोड़ कर समझाए जाते हैं। इसी तरह साई को तो मानते हैं, लेकिन साई की



नहीं मानते। साई की नहीं मानते, क्योंकि साई की पूर्णता पर हमें संदेह होता है। हम इस बात को नहीं मानते कि हम साई के ही अंश हैं और उससे मिलकर पूर्णता चाहते हैं, क्योंकि हम उसे देख नहीं पाते। उस बुद्धि के लिए तो साई समाधीस्थ हो चुके हैं। प्राण त्याग चुके हैं। दुनियादारी के लहजे से तो साई मर चुके हैं! अब तो वो सिर्फ हमारी इच्छापूर्ति का साधन बन चुके हैं। हम साई से तो माँगते हैं। साई को भूल जाते हैं। साई तो हमारे लिए सिर्फ चमत्कार का माध्यम हैं। ऐसे चमत्कार तो साई तब भी करते थे, जब वो सशरीर थे और आज भी करते हैं।

साई के जिन चमत्कारों का जिक्र सुन कर हम अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए साई के पास जाते हैं, उन चमत्कारों का ध्येय तो उनके भक्तों का उत्थान ही था। साई कोई छोटे-मोटे ज़ादूगर नहीं थे, जिन्हें अपनी आजीविका चलाने के लिए ऐसे चमत्कारों का सहारा लेना पड़ता। वो तो एक फ़कीर थे, जिनकी जीवन से अपेक्षाएं बेहद सीमित थी। अगर वो चमत्कार नहीं करते तो भी उनको भिक्षा माँग कर रूखी-सूखी तो मिल ही जाती थी। पहनने को फटे कपड़े ही उन्हें भाते। वो तो अपने भक्तों की विनम्र भक्ति और उनकी दीनता से अभिभूत हो कर इन लीलाओं को करते, जिन्हें साधारण बुद्धि चमत्कार समझती, जबकि आध्यात्मिक रूप से यह बाबा की उनके भक्तों को पुनः संस्कारित करने की अनूठी रीत थी। साई का प्रत्येक चमत्कार हम सभी में संस्कार डालने के लिए ही होता था। अब भी होता है। विभिन्न कारणों से अपने स्थान से हट चुके 'मैं' को पुनः आत्मरूप में स्थिर करना आध्यात्म का तो अर्थ ही है। भूल चुके संस्कारों को याद कराना। उनको स्थिर कर देना। खुद को खुद से मिलाकर शांति देना यही आध्यात्म का मुख्य उद्देश्य है और क्रिया भी। यही सत्य का मार्ग भी है। खोज साई की नहीं। खोज स्वयं की। यही साई के चमत्कारों का उद्देश्य होता है।



साई की सत्य का मार्ग दिखाने की रीत भी एकदम सरल है। वो हमें देना तो कुछ और ही चाहते हैं, लेकिन जानते हैं कि हमें किन चीजों की इच्छा है। किन चीजों को पाने की आशा में हम बेचैन रहते हैं। हममें से अधिकाँश तो धन-संपत्ति, शादी, संतान, क़ानूनी मामलों में जीत और इन जैसी ही अनेक चीजों साई से माँगने जाते हैं। वो सरलता से दे देते हैं। वो तो सितारों की चाल भी हमारे लिए बदल देते हैं। हाथ की रेखाएं बदले बिना साई नसीब का लेखा बदल देते हैं। यह उनकी शक्ति है। हमारे नसीब और औकात से बढ़कर हमें दे देते हैं। हमारा लालच बढ़ जाता है। हम और माँगते हैं। वो और दे देते हैं। माँगने और देने का सिलसिला बराबर चलता रहता है। हम माँगते-माँगते थक जाते हैं, अब थोड़ी ग्लानि भी होने लगती है। भिखारी-सा महसूस करने लगते हैं।

इंसान के पास जब कुछ नहीं हो तो उसे डर नहीं लगता। खो कर भी क्या खो जायेगा? मिलने लगता है तो डर बढ़ जाता है। अब, जबकि वो हमें हमारी पसंद का इतना कुछ दे चुके होते हैं, तो उन चीजों के खो जाने का डर हमारे मन में समा जाता है। इच्छाओं के फलीभूत होते ही इन चीजों को संभालने की अशांति और खोने का भय आकार ले लेते हैं। हमारी लालच पूरी होते ही और बढ़ जाती है और ग्लानि में बदल जाती है। जलन के मारे जब दुश्मनी के भाव से जीने लगते हैं, तो शोक कहाँ पीछे रहता है। लोगों से आगे बढ़ेंगे तो दुश्मन भी बढ़ जाते हैं। दूसरों को अपने से ज़्यादा खुश देखते हैं, तो जलन होने लगती है। शोक तो दुःख के साथ ही चलता है। जो आज सुख का विषय है, वो कल दुःख का कारण बन जाता है।

हमने साई से माँगा भी तो अनित्य और नाशवान है। जो कुछ भी हमने साई से लिया है, उन सभी का एक दिन खात्मा हो ही जाना है। अब जब मिल गया है, तो मन स्थिर नहीं रह पाता।



बेचैनी का आलम रहता है। संस्कार दूषित हो गए जो होते हैं। हम जीते-जी हम मर जाते हैं। पहले इच्छाओं को बल देने, फिर उन इच्छाओं की पूर्ति के लिए और उसके बाद उनका बोझ लिए-लिए हम जिंदा लाश ही तो बन जाते हैं। सारी संवेदनाएं शून्य से नीचे होती हैं। बदहवास से ठौर पाने को तड़पते हैं। आँखें रोती हैं, लेकिन आँसू को तरसती हैं, क्योंकि आँसू तो हम पहले ही अपनी इच्छाओं के लिए बहा चुके होते हैं। जुबान दर्द को बयान करना चाहती है, लेकिन शब्द तो माँगों को बुनते-बुनते खो चुके होते हैं। निर्जीव होने की कोई और पहचान होती है क्या?

साई कहते भी तो थे, “मनुष्य की बनाई हुई सारी चीज़ें नाशवान होती है। ईश्वर-प्रदत्त वस्तुएं हमेशा रहती हैं।” क्या सूरज-चाँद को कहीं खत्म होते देखा है? कुदरत का रूप बिगाड़ सकें है लेकिन क्या कुदरत खत्म हुई? मनुष्य का स्वरूप बिगड़ गया है, लेकिन क्या ईश्वर का मनुष्य में भरोसा कम हुआ? आज भी नयी नस्ल तो पैदा हो ही रही है! जब अनित्य में ममता बाँध लेंगे, तो उसके खत्म होने पर दुःख ही होगा। अनित्य ही असत्य है। असत्य के पैर नहीं होते। वो चलता नहीं, हवा में तैरता है, लेकिन औंधे मुँह गिर भी पड़ता है। उसकी उम्र ज़्यादा नहीं होती। हमारा शरीर नाशवान है, अनित्य है, असत्य है, लेकिन आत्मा अजर-अमर है। रूप नाशवान है, स्वरूप नित्य है। सत्य है।

विषय-आधारित सुख नाशवान है। विषय के साथ उस सुख की समाप्ति तय है। उसी तरह साधन-जन्य आनंद असत्य है क्योंकि साधन की समाप्ति पर वह समाप्त हो जायेगा। सुख, शांति और आनंद नित्य है और सत्य है।

साई से माँगना ही है तो इनको माँगों। ऐसी वास्तु माँगों जो कभी खत्म न हो। और साई से माँगना भी क्या! जब साई से माँगते हैं, तो साई को यह अहसास कराते हैं कि हमें उस पर भरोसा नहीं



है। माँग कर हम उन्हें यह बताते हैं कि उन्हें तो यह पता भी नहीं है कि हमें क्या चाहिए। अपना हाथ फैलाए हुए हम तो अपना ही कद गिरा चुके होते हैं। हम तो जानते ही नहीं है कि वो तो समुन्दर लेकर बैठे हैं, हमें देने के लिए और हम हैं कि चुल्लू भर पानी में ही संतोष कर लेते हैं। कभी उन पर तो छोड़ कर तो देखो! हम कुछ छींटे अपने पर डाल कर खुशी मनाते हैं, साई तो हमें तर करने बैठे हैं। एक बार माँगना छोड़ कर साई पर भरोसा कर के तो देखो!

फिर जीवित होने के लिए अब हम दोबारा साई की तरफ ही मुड़ते हैं। साई से फिर चमत्कार की उम्मीद लिए। अब एक नए तरह का चमत्कार चाहते हैं, हम।

साई चमत्कार करते भी हैं। साई पर अपना भार छोड़कर हम दोबारा जी उठते हैं। सूख चुकी आँखों के कुँए में फिर पानी की कोई झिर फूट पड़ती है। अब आँसू नमकीन नहीं, मीठे लगते हैं। साई को शुकिया कहने के लिए सूख चुकी जुवान को एक बार फिर शब्द मिल जाते हैं। निढाल जिस्म जीवन की राहों पर हल्का होकर मानो तैरने लगता है। इच्छाओं का बोझ जो हट चुका होता है। यह जीवन अब सदा के लिए होता है। साई का भाव हमारे अन्दर फिर जी उठता है। **साई को हम फिर जीवित जानने लगते हैं।** सत्य की पहचान मिल जाती है। साई ही सत्य है, नित्य हैं। उससे मिलने वाली चीज़ कभी खत्म नहीं होगी।

अब जब साई अपनी मर्जी से देना शुरू करते हैं, तो वो सत्य से चित्त को भर कर हमें आनंद से सराबोर कर देते हैं। न ही किसी चीज़ का मोह। न उससे उत्पन्न होने वाला कोई शोक। न उसके खो जाने का भय और न ही उसके जाने का कोई दुःख।



मुझे सदा जीवित ही जानो, अनुभव करो सत्य पहचानो। साई को जीवित जानने की अनुभूति से हमारे मन का सफ़र अब सुख, शांति और आनंद का सफ़र बन जाता है।

❀ बाबा भली कर रहे... ❀

श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।



• साई बाबा का छठा वचन •

मेरी शरण आ ख़ाली जाए,
हो तो कोई मुझे बताये।





बाबा का यह छटा वचन साई के शरणागत को साई की महिमा के बारे में बताता है। यह कि उनकी शरण में आने वाला कभी खाली हाथ नहीं लौटता। साई का यह वचन एक प्रकार से साई के विराट चरित्र को उजागर भी करता है, जिसमें साई में भरोसा रखने वाले को साई ने इस बात की छूट भी दी है कि वो साई की शरण में जाने के बाद अगर मन की मुराद नहीं पाता तो इस बात की फ़रियाद साई से कर सकता है। इसी तरह इस वचन को सुनने वाले के मन में साई के सर्वशक्तिमान राजाधिराज स्वरूप का उदय होता है। मानो कोई राजा अपनी प्रजा से कह रहा है कि तुम मेरी शरण में आ जाने के बाद खाली हाथ कभी नहीं जा सकते।

दूसरी तरफ़ इस वचन में साई की करुणा भी उजागर होती है, जिसमें वो बड़े ही प्रेम से इच्छा करने वाले को यह भी कहते समझ में आते हैं कि अगर उनकी शरण में आकर कोई अपने मन की नहीं पा सका है, तो वह ज़रूर अपने साई से इस बात की फ़रियाद भी कर सकता है।

इस वचन को समझने के लिए समझना होगा कि साई की शरण क्या है? उनकी शरण पाने के लिए एक भक्त में क्या योग्यता होनी चाहिए? शरण में जाकर भक्त को क्या साई से मिल जाता है? मन का नहीं मिल पाने पर कोई भी भक्त साई से क्या फ़रियाद कर सकता है?

शरण में आने की शुरुआत चरणों से होती है, और भक्ति की पहली सीढ़ी याचना बनती है। याचना में इच्छाएँ छिपी होती हैं। पहले-पहल हम साई के समक्ष याचक बन कर ही तो आते हैं। उनसे



चमत्कारों की उम्मीद रखते हैं। यहीं से साई से हमारे प्यार-भरे रिश्ते की शुरुआत होती है। जीवन के इम्तिहान में जो पर्चा हमारी समझ में नहीं आता है, उसका हल माँगने हम साई के पास पहुँचते हैं। माँगते हैं और इतनी तीव्रता से माँगते हैं कि साई करुणावश हमें वो दे देते हैं, जो हम उनसे चाहते हैं। लोभ और मोह में फंस कर हम साई से सुख के आवरण में दुःख माँग लेते हैं। आज जो सुख समझ में आता है वो कल का दुःख ही होगा, क्योंकि हम साई से सभी कुछ वही माँगते हैं, जो नाशवान हैं। वस्तु को आज पाना और कल उसका नाश दुःखी ही करता है। साई देना कुछ और चाहते हैं, लेकिन रुक जाते हैं क्योंकि हमें तैयार नहीं पाते हैं। उनका भण्डार तो अमूल्य वस्तुओं और अहसासों से लबरेज हैं लेकिन हम ही निरर्थक चीज़ें उनसे माँगते रहते हैं तभी हम पाकर और माँगते हैं। साई और भी दे देते है। माँगने का और पाने का यह सिलसिला चलता ही होते हैं, जब तक हम माँगते-माँगते शर्मिदा नहीं हो जाते। वो हमारी माँगने की आदत से दुःखी भी हो जाते हैं, लेकिन वो तो दातार है। देना बंद ही नहीं करते। लेकिन इस पूरे क्रम में वो हमें सुधारते, सँवारते चलते हैं।

जब हमारे पास अपनी ही ज़िद और साई की कृपा से नाशवान चीज़ों का अम्बार लग जाता है, तो उनके खो जाने का डर भी मन में बैठ जाता है। तब साई हमें वो देना शुरू करते हैं, जो वो हमेशा से ही हमें देना चाहते थे। अब उनका काम शुरू होता है।

वो हमारे ही माँगे हुए दुःख का अहसास मिटाने लगते हैं। हमारे कर्मों की गति के अनुसार हम पर दुःख तो पड़ता है, लेकिन हम दुःखी नहीं होते। हमें दुःख प्रभावित नहीं करता। हम सँवर रहे होते हैं। दुःख के अहसास के मिटने के बाद साई की कृपा से हमें सुख के पंख लग तो जाते हैं लेकिन अब हम बेलौस उड़ने नहीं लगते। सँवरने से जीवन में संतुलन आ जाता है। स्थायित्व आ जाता



है। साई के सही स्वरूप की पहचान होने लगती है। विश्वास होने लगता है कि जो साई कर रहे हैं वो हमारे भले का ही तो है।

साई अनंतता का भी स्वरूप हैं। हर कण में, हर मन में, हर जीवन में, नभ-तल में साई हैं। यूँ कहें कि यह सभी कुछ जो अस्तित्व में है, वह सभी कुछ साई में है या प्रत्येक विद्यमान जड़ और चेतन वस्तु में साई समाये हुए हैं। बात एक ही है। साई परम सत्ता हैं। सर्वव्यापी हैं। सर्वज्ञाता हैं। सर्वशक्तिमान हैं। **सर्वज्ञ साई हैं या साई सर्वज्ञ हैं, इसमें भेद कर पाना मुश्किल है।**

साई की शरण पाने के लिए या उसमें समाने के लिए किसी को कोई विशेष जतन या प्रयत्न नहीं करना पड़ता। किसी विशेष स्थान पर जाने की आवश्यकता भी नहीं है। अनुष्ठान करने, आहुति देने की भी कोई ज़रूरत नहीं होती है।

साई की शरण पाने के लिए भक्त को किसी प्रकार की विशेष योग्यता भी प्राप्त नहीं करनी होती। कोई पोथी या पुराण का अध्ययन नहीं करना है। कोई मंत्र नहीं रटना है और न ही कोई तंत्र साधना है। न कोई विशेष वस्त्र धारण करने हैं और न ही कोई वेश-भूषा। कोई हार-फूल, अगरबत्ती, चादर या फिर कोई भी महंगी वस्तु नहीं चढ़ानी है! साई को कुछ भी दरकार नहीं है। जो हमें सभी कुछ देता है, उसे हम लौटा ही क्या सकते हैं? ये तो सोचना भी बेईमानी हुई। उसी का तो सब दिया हुआ है और इन चीजों से हमारा रिश्ता तभी तक है, जब तक उसका दिया हुआ यह शरीर है। शरीर नाशवान है और उसके सारे रिश्ते भी। यही शाश्वत सत्य भी है। साई तो अजर-अमर हैं और उनका-हमारा साथ भी। इस साथ को बाँधने के लिए तो कोई भी नाशवान वस्तु या रिश्ता सेतु नहीं बन सकते।

साई की शरण को पाने के लिए नाम रटन करने जैसी भी कोई साधारण क्रिया नहीं करनी होती। जीभ और होंठ को हिलाना भी नहीं है। सिर्फ साफ मन से साई का स्मरण मात्र कर लो। वही



काफी है। मन साफ़ है और साईं में पूर्ण विश्वास है, तो साईं अपनी शरण में ले लेते हैं। पर मन साफ़ कैसे होगा?

मन को तो हम ने दुर्भावना, बैर, अहंकार, वैमनस्य, इर्ष्या, इर्ष्या से मैला कर रखा है। सुधार करना होगा। यह चुनौती स्वीकार करनी होगी कि साईं को मन में बिठाना है और मन को साफ़ भी करना है। आप साधै, सब साधै। खुद को साध लो, सब को साध लो। अपने आप को साधने का प्रयत्न भी जब सच्चे मन से प्रारम्भ कर लो तो साईं को पाने का अहसास होने लगेगा। उनकी शरण मिल जाएगी। इस अहसास के बढ़ते ही उनसे प्रेम की अनुभूति होने लगेगी।

याचना से शुरू हुई भक्ति का चरम प्रेम है। जब साईं के बिना, उनकी बातों के बिना, उनके दर्शन किये बिना, जो अधूरापन लगे और जब वही अधूरापन पूरा भी लगने लगे तो समझो साईं से प्रेम हो गया है। इस प्रेम को समझने के लिए मीरा का कृष्ण के प्रति प्रेम समझना होगा। प्रेम में तो विष को अमृत में बदलने की शक्ति होती है।

साईं तो प्रेमी हैं हीं। अनंत प्रेमी। उनके मन में हमारे लिए अकूत प्रेम का झरना सतत बहता ही रहता है। इस अनंत झरने में डूब कर ही हम अपने आप को साईंमय बना लेते हैं। साईं में और हम में कोई भेद नहीं रहता। साईं की शरण में जाना, उनसे एकाकार हो जाने जैसा ही है। अनंत प्रेम। जब प्रेम अनंत हो जाता है तो रोम-रोम संत हो जाता है। साईं का सान्निध्य पाकर हम भी संत हो जाते हैं। प्रेम में प्रेमी जैसा हो जाना प्रेम का सरल भाव है। हमारे रोम-रोम में भी संतत्व का भाव हिलोरे मारने लगता है। ये हमारा बदन मंदिर बन जाता है। साईं का मंदिर... जिसमें सदैव साईं की ज्योत साईं के आगे प्रज्वलित रहती है। अनुपम, अखंड ज्योत। अपने गुरु के प्रति अनंत प्रेम की ऐसी ही ज्योत से साईं ने



द्वारकामाई में वो धूनी जलाई होगी, जो आज भी मानवता का कल्याण करती है। जब रोम-रोम संत हो जाता है, हमारा शरीर देवालय बन जाता है, तब हमारा हृदय मन से महंत हो जाता है। साई से विलक्षण प्रेम ही उनकी शरण है। हमारे उद्धार का रास्ता खुलने लगता है।

साई से प्रेम कर और बदले में उनका प्रेम प्राप्त कर कोई भी कभी ख़ाली नहीं रहता। झोलियाँ इतनी भर जाती हैं कि छोटी पड़ने लगती हैं। हाथ उठते बाद में हैं और दुआएँ कुबूल पहले हो जाती हैं। सज़दा में झुका बाद में जाता है, बरक़त पहले हो जाती है। साई की करामात है ही ऐसी। उन्हें किसी को ख़ाली हाथ लौटाना आता ही नहीं है।

साई की शरण में नाशवान वस्तुओं का, रिश्तों का मोह सिमट जाता है। उनकी निरर्थकता समझ में आने लगती है। उनमें आसक्ति मिटने लगती है। वासना की आग टंडी पड़ने लगती है। मोह साई में स्थित हो जाता है। साई की शरण सुखकारी लगने लगती है। प्रेम का अर्थ समझ में आने लगता है। आसक्ति का स्वरूप बदल जाता है। आसक्ति अब साई शरण की हो जाती है। उनके बिना चैन नहीं मिलता। मन में साई नाम का रटन बराबर चलता रहता है। साई सदा साथ रहते हैं। मोह आनंद में बदल जाता है। साई के साथ का आनंद।

भविष्य अनिश्चित होता है, इसीलिए उसका भय हमेशा हमें सताता ही रहता है। अनिश्चितता की कोख से डर का जन्म होता है। भय का दूसरा अर्थ मृत्यु है। भयभीत व्यक्ति मृत के समान होता है। साई के साथ से भविष्य का यह भय भी मिट जाता है। साई नाम से मन में अभयत्व का भाव जागृत हो उठता है। कोई मेरा बुरा नहीं कर सकता! यह भाव मन में जगह बनाने लगते हैं। निर्भयता का उदय होने लगता है। अनिश्चितता के भंवर में साई के साथ से अभय का कमल खिल उठता है।



साई की शरण मन के भाव बदल देती है। हम जब उसकी शरण में आते हैं, तो रिक्तता लेकर आते हैं, याचक बन कर आते हैं, लेकिन साई इस रिक्तता में सुख, शांति और आनंद का भाव भर देते हैं। कोई कहे तो सही कि साई की शरण से वो ख़ाली लौटा है। साई ने कभी किसी को ख़ाली नहीं लौटाया।

🌸 बाबा भली कर रहे... 🌸

श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।



• साई बाबा का सातवाँ वचन •

जैसा भाव रहा जिस जन का,
वैसा रूप हुआ मेरे मन का।





बा बा का यह सातवाँ वचन साई के भक्तों को परस्परता का भाव सिखाता है। जैसा हमारे मन का भाव होगा, साई के मन का रूप भी वही हो जायेगा। भाव में ही साई बसते हैं, इस सत्य को यह वचन सुदृढ़ करता है, बल देता है। जितनी शक्ति हम अपने भाव को देंगे, उतना ही बल हम साई के मन को भी देंगे। यह वचन इसी भाव की महिमा का गान है।

भाव मन की सहज उत्पत्ति होते हैं जिन्हें, जब हम अपनी इच्छा-शक्ति से प्राण देते हैं, तो वो फलीभूत होते हैं। भाव से ही विचार और विचारों से कर्म बनते हैं। इन्हीं कर्मों से हम अपना नसीब या प्रारब्ध गढ़ते हैं। स्पष्ट है, भाव से ही हम बनते हैं। भाव से ही हमारी सृष्टि का निर्माण होता है।

परम सत्ता, जिसे हम ईश्वर कहते हैं, में तो स्वयं की कोई क्रिया है नहीं। वह तो निर्गुण, निराकार है। उसमें तो भाव भी नहीं है। जिसके पास जो नहीं होता, उसे वही चाहिए भी होता है। देवता, इसीलिए मानव रूप लेकर इस धरती पर आते हैं कि वो भावजनित भक्ति का सुख और आनंद ले सकें। **इसीलिए कहते हैं कि ईश्वर भाव का भूखा है।** उसने अपनी अर्धांगिनी माया या प्रकृति को इस सृष्टि की रचना का निमित्त बनाया और इस सृष्टि की समस्त रचना माया के भाव से ही हुई। सुन्दर भाव लेकर प्रकृति ने इस सृष्टि को इतना सुन्दर बनाया। प्रकृति ने ही भगवान की भी रचना की, क्योंकि सृष्टि स्वयं इतनी व्यापक और सामर्थ्यवान नहीं थी कि वह इतनी विशाल रचना को गतिमान रख सके। उसी ने भगवान के तीन रूपों को बनाया। रचियता या निर्माता के रूप में **ब्रह्मा**, स्थितिकर्ता के रूप में **विष्णु** और विध्वंस पश्चात् नवनिर्माण के देव के रूप में **महेश**।



चूँकि भगवान स्वयं अपने कर्म-क्षेत्र को भोग नहीं सकते, इसलिए भगवान के गुण लेकर मनुष्य बनाये गए। भगवद् आचरण लिए परिपूर्ण मनुष्य ही अवतार के रूप में जाने जाते हैं। जिस मनुष्य में भगवान का भाव प्रदीप्त या उज्ज्वल रहता है, वह अवतार माने जाते हैं। अपने भाव से ही मनुष्य भगवान को महसूस कर सकता है और इन्हें अपने कर्मों से बल देकर खुद भगवान का दर्जा भी प्राप्त कर सकता है। सिर्फ भाव का ही महत्त्व है।

कस्तूरी तो मृग की नाभि में होती है। नाभि में कस्तूरी की सुगंध लिए मृग इसी सुगंध को ढूँढने के लिए वह वन-वन भटकता है। वैसे ही मानव ने कभी भगवान को देखा नहीं, लेकिन उसने इस सृष्टि के निर्माता, स्थितिकर्ता और संहारकर्ता के रूप में भगवान की अवधारणा को अपने भाव से बल दिया। ये भाव उसी कस्तूरी की सुगंध है। भाव में भगवान की उपस्थिति से हमारे विश्वास को बल मिलता है। भगवान की खोज हमारे अस्तित्व को बनाये रखती है। हमें निडर हो कर जीने का साहस मिलता है। भगवान की उपस्थिति का अहसास हमें बुराई के मार्ग से दूर रहने की सीख देता है। यही भाव अंतरात्मा भी कहलाता है। जो इसकी सुन लेता है, वह अपनी अच्छाई को बल देकर बुराई से दूर रहता है और जो इसे नहीं सुनता, वह अपने अन्दर के भगवद् तत्त्व को शक्तिहीन बना देता है और दानव बन जाता है। हमारे भाव में ही देव और दानव बसते हैं।

जो काम सहज ही मानव देह की सीमाओं से परे लगता है, वह भाव से ही संभव हो जाता है। हमारी सीमित बुद्धि इसका श्रेय भगवान को देती है। इनको सहज भाषा में चमत्कार भी कहा जाता है। चमत्कार कहीं बाहर से नहीं होते। हमारे अपने भावों की प्रगाढ़ता से ही चमत्कार संभव होते हैं। भावों के बंधन में रहने वाले ईश्वर हमारे भावों की तीव्रता के चलते चमत्कार करने को मजबूर हो जाते हैं।



सामान्य मानव बुद्धि के चलते हम चमत्कार को ही नमस्कार करते हैं। उन्हीं में भगवान को ढूँढते हैं। कुछ लोग तो चमत्कारों को ही भगवान के होने का साक्ष्य मानते हैं। साई में हमारा विश्वास भी चमत्कार के कारण ही जड़ें जमाता है। साई में जब हमारा विश्वास प्रगाढ़ होने लगता है तब इन चमत्कारों की संख्या भी बढ़ती जाती है और फिर कुछ समय के बाद ऐसी घटनाएं, जो एक समय पर हमें चमत्कारी लगती थीं, अब सामान्य लगती हैं। ऐसे ही जब भावों की तीव्रता कम हो जाती है तब चमत्कार भी क्षीण पड़ने लगते हैं।

मन में साई बसते हैं और मन में ही भाव भी। दोनों के एक ही जगह रहने से चुम्बकीय प्रभाव जैसी शक्ति काम करती है। चुम्बक के प्रभाव में लम्बे समय तक रहने पर एक साधारण से लोहे के टुकड़े में भी चुम्बक के लक्षण, थोड़े ही समय के लिए, लेकिन आ ही जाते हैं। यहाँ हमारे मन में, तो दोनों - साई और हमारे भाव - प्रतिपल साथ में ही रहते हैं। भावों में बसने वाले साई कब खुद हमारे भावों को पवित्र करने लगते हैं पता ही नहीं चलता। साई के साथ में रह-रह कर हमारे भाव साई का स्वरूप धारण कर उनकी शक्तियों को अपने अन्दर समा लेते हैं। भाव साई हो जाते हैं और साई भाव।

भाव दो प्रकार के होते हैं। भक्ति-भाव और सेवा-भाव। अपने इष्ट के प्रति सम्पूर्ण प्रीति का भाव भक्ति भाव कहलाता है। सभी ओर वही दिखता है, जिसको हम अपने मन में पूजते हैं। इसमें माथे पर चंदन-तिलक लगाने की वृत्ति जैसा थोथा आडंबर या बार-बार प्रणाम या दण्डवत् करने जैसी मात्र शारीरिक क्रिया का कोई महत्त्व या स्थान नहीं है। प्रीति तो मन से होती है। धन की लालच में साई के दर पर आई मद्रासी भजन मंडली की महिला प्रमुख ने साई को राम के रूप में देखा तो काकासाहेब दीक्षित के ध्यान में वे विट्टल के रूप में आये। शामा को साई ने भगवान दत्तात्रेय के रूप में दर्शन दिए तो



मुले शास्त्री को उनके गुरु घोलप स्वामी के रूप में। डॉ. पंडित को उन्होंने काका पुराणिक के रूप में दर्शन दे कर अपने गले और माथे पर चंदन लगाने की अनुमति दी। नानासाहेब चांदोरकर के पंढरपुर तबादले पर मस्जिद में पहले ही साई ने उनके भाव के अनुरूप पंढरपुर जाने की भूमिका बना दी थी। दासगणु के संगम स्नान के भाव को जान कर साई ने अपने चरणों से ही पवित्र तीर्थों की धारा बहा दी। सर्प को साई का रूप समझ कर जब बालाजी नेवासकर ने उसे दूध अर्पण किया तो वह बिना किसी को हानि पहुंचाए वहाँ से चला गया। जैसा जिसके मन का भाव था, उसे वैसे ही बाबा ने दर्शन दिए। उनके भावों में अपने इष्ट के दर्शन की प्रगाढ़ता का मान साई को रखना ही पड़ा। भाव से सभी कुछ संभव है। भाव बिन भक्ति अधूरी है। अधूरी भक्ति से कुछ भी हासिल नहीं होता, वो शक्तिहीन होती है।

श्रीमति सावित्रीबाई तेंदुलकर के भाव थे, उसी कारण से बाबा ने उनके पुत्र बाबू तेंदुलकर की कुंडली के ग्रहों की चाल बदल कर डॉक्टर न बन पाने के योग होने के बावजूद उन्हें परीक्षा में पास करवाया। बापूसाहेब बूटी की मृत्यु की भविष्यवाणी को उल्टा कर उनकी मृत्यु को टाल दिया। अनेक प्रकांड ज्योतिषियों की भविष्यवाणी, कि दामूअन्ना कासार के जीवन में संतान सुख नहीं लिखा, को बाबा ने बदल दिया और उनके घर में संतान की उत्पत्ति हुई। ऐसे ही कई निःसंतान दम्पतियों के घर बाबा ने कई अड़चनों ने बाद भी संतान सुख की प्राप्ति करवाई तो कितनों के ही घर बाबा ने धन-धान्य से भरे। आज भी साई के चमत्कारों की कोई थाह नहीं है। अपने भावों से मिली साई की कृपा के चलते गृह-नक्षत्रों की चाल भी बदल जाती है।

शामा के मन में बाबा के प्रति मित्रता का भाव था, लेकिन शायद उसके पूर्व कर्मों के चलते धन की कमी उसे रहनी ही थी।



बाबा के प्रति शामा के भावों की तीव्रता का अंदाज़ा इसी बात से लग सकता है कि जब वे सोते तो उनकी प्रत्येक श्वासोच्छ्वास के साथ खर्राटों में साई...साई... का उच्चारण स्पष्ट सुनाई देता। शामा के पास बहुत अधिक धन न होने के बावजूद बाबा की कृपा के चलते उन्होंने एक धनवान व्यक्ति की तरह जीवन बिताया। बाबा ने उसी शामा को बड़े-बड़े धनवान लोगों का, न्यायाधीशों, मामलतदार, जिलाधीशों, महंत और मटाधीशों का संग करवाया। उन्हें सभी जगह बाबा का प्रतिनिधि मानकर लोगों द्वारा उन्हें बहुत आदर और मान, आदर-सत्कार दिया जाता और इन्हीं भक्तों से उन्हें कीमती भेंट, इत्यादि भी मिलती। धनाढ्यों की तरह घोड़ा-गाड़ी और हाथी की सवारी भी शामा को करने को मिलती। रसूखदार भी बाबा के दर्शन करने के लिए अपनी सिफ़ारिश शामा के माध्यम से ही करवाते। इस तरह अपने भावों के चलते उन्हें बाबा की कृपा से वो टाट नसीब हुए, जो बड़े-बड़े सेटों को नसीब नहीं होते। शंकर के दर्शन से पूर्व जिस तरह नंदी पूजे जाते हैं, उसी तरह साई बाबा के दर्शनों के पूर्व भक्त शामा से होते हुए ही जाते। साई के सुदामा थे - शामा। भाव इतने बलवान होते हैं कि प्रारब्ध को भी छल देते हैं। यह शामा का जीवन जानने से समझ में आता है।

इसी तरह प्राथमिक स्तर तक भी औपचारिक शिक्षा न पाए दाभोलकर के मन में भाव उत्पन्न हुआ कि बाबा की लीलाएँ लिखें और उनके माध्यम से बाबा का चरित्र लोगों तक पहुँचना चाहिए, तो बाबा ने उनके भावों का मान रखा और आज उन्हीं दाभोलकर के लिखे श्री साई सच्चरित्र को पूरी दुनिया में लाखों लोग रोज़ पढ़ते हैं और उसमें बाबा के व्यक्तित्व के सजीव चित्रण से स्वयं को धन्य पाते हैं। दाभोलकर के भावों के चलते ही बाबा ने उन्हें यह आश्वासन दिया था कि यदि दाभोलकर अनन्य भाव से अपना अहंकार छोड़कर बाबा की शरण में आयेंगे तब बाबा उनके माध्यम से स्वयं अपना



चरित्र लिखेंगे। अहंकार भी भाव है, लेकिन उसकी नकारात्मकता बाकी सारे भावों को प्रदूषित कर देती है। बाबा ने अपना वचन निभाया और आज दाभोलकर को वेदव्यास के समकक्ष पूजनीय बना दिया है। भाव तो कृते को भी समन्दर कर देते हैं।

भाव कैसे फलीभूत होते हैं? जब भक्ति भाव अपने चरम पर पहुँच जाता है, और जब चहुँओर, हर किसी में अपने इष्ट का स्वरूप ही दिखता है तो मन में सेवा भाव का उदय होने लगता है। भाव अब प्रीति की सीढ़ी चढ़कर सेवा की सीढ़ी पर चढ़ कर बदलने लगते हैं। अब साई किसी मंदिर में, मूर्ति में, चित्र में, छवि में, किसी स्थान विशेष में सीमित न होकर पानी की फुहार की तरह सभी दिशाओं में फैल जाते हैं। भाव अब अपने साई के प्रति न रह कर हर मनुष्य में मौजूद साई की ओर खिंचने लगते हैं। भाव का स्वरूप बदल जाता है। अब साई एक न होकर अनेक हो जाते हैं। **मेरे अन्दर भी साई होते हैं, तो सभी के अन्दर भी साई होते हैं।** यह भावना इस भाव से बनती है। क्या जड़ और क्या चेतन? सभी में साई ही तो है। सभी का आदर, सभी को सम्मान। सभी को प्रेम और सभी से प्रेम। भाव अब फल देने लगते हैं।



भावों के फलीभूत होने की अकेली सबसे महत्त्वपूर्ण शर्त है, उनका निर्दोष होना। मन में मैल यानी गंदगी भरी होगी, तो मलिन भाव उत्पन्न होंगे और मलिन भावों में किसी का भी भला नहीं छिपा होता। भाव में अगर स्वार्थ भरा हो, तो भावों का वज़न कम हो जाता है। स्वार्थ है, तो साथ नहीं होता और साथ में स्वार्थ नहीं होता। स्वार्थ का वज़न बहुत होता है। रिशतों में से स्वार्थ निकाल देने पर रिश्ते हलके हो जाते हैं। महत्त्वहीन। निःस्वार्थ भाव से ही साई को पाया जा सकता है। जब मन दूसरों के सुख में सुखी और दूसरों के दुःख से दुःखी होने लगे तो, समझो अब सेवा भाव मज़बूत होने लगा है। जब दूसरों के दुःख से मन दुःखी होने लगता है, तो यही



मन उस दुःख को दूर करने के प्रयास भी करने लगता है। जब हम दूसरों की आँखों से आँसू पोंछते हैं, जब किसी रोते हुए के चेहरे पर मुस्कान लेकर आते हैं, किसी निर्धन का इलाज करवा देते हैं, किसी भूखे को रोटी देते हैं, बेसहारा को सहारा देते हैं, तब हम साई को पा लेते हैं। उसी दुःखी चेहरे पर मुस्कान में, उसकी आँखों के आंसुओं में, रोटी के उस टुकड़े में, सहारे के उस सुख में हमें अब साई दिखाई देने लगता है। साई मूर्ति से निकल कर मानो हमारे जीवन में सुगंध की तरह समा जाते हैं।

दूसरों की सेवा करने वालों को कभी अपने लिए दुआ माँगनी ही नहीं पड़ती। अपने लिए कुछ माँगने की ज़रूरत ही नहीं रहती। हाथ उठने से पहले ही दुआ कुबूल हो जाती है। साई को पाने के बाद अब किस और चीज़ की दुआ माँगोगे?

सुख, शांति और आनंद के रूप में हमें साई मिल जाते हैं। जैसा रूप हमारे मन का होता साई उसी रूप में ढल जाते हैं। वो कभी भी हमें दुःखी नहीं होने देते। यही तो हम साई से चाहते भी हैं। जैसा भाव रहा जिस जन का, वैसा रूप हुआ मेरे साई के मन का।

 बाबा भली कर रहे... 

श्री सदगुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।



• साई बाबा का आठवाँ वचन •

भार तुम्हारा मुझ पर होगा,
वचन न मेरा झूठा होगा।





बाबा का यह आठवाँ वचन साई के वचनों की सत्यता का बोध कराता है। साई ने मस्जिद में बैठ कर कहा भी तो है कि उनके वचन हमेशा सत्य होते हैं, कोई थोथे-पोचे नहीं। साई हमारा भार लेने को तैयार हैं। सवाल उठता है कि क्या हम अपना भार उन्हें देने को तैयार हैं? क्या हम अपना भार छोड़ने का मन बना चुके हैं? क्या हम अपने भार के बिना जीने को तैयार हैं? जब इन प्रश्नों के सही-सही उत्तर हम स्वयं को देने को तैयार हो जायेंगे, तो हमारा भार भी हम साई के चरणों में छोड़ पाएंगे।

क्या है हमारा यह भार? जब हम पैदा होते हैं तब हम शून्य अवस्था में होते हैं। शून्यता से ही आते हैं। यही शून्यता हमें खींचती है। जीवन के अंत में हम फिर एक शून्य की ओर बढ़ जाते हैं। शून्यता से शून्यता के सफ़र का नाम ही जीवन है, लेकिन हम इस सफ़र में शून्यता के भाव को भूल कर भार उठाना शुरू कर देते हैं। भार ममता का, अहंकार का, बैर-भाव का, अपमान का, क्रोध का। बस! इसी भार को इकट्ठा करते रहते हैं और जीवन भर इसी भार को लिए चलते जाते हैं। यही भार हमें सालता है, दबाता है। हमारी साँस फूल जाती है। हिम्मत जवाब दे जाती है, लेकिन यह भार है कि कम होने की जगह बढ़ता ही जाता है। इकट्ठा करने की आदत जो होती है हमें। इसी भार को ढोने की जुगत में हम अपना जीवन जीना भूल जाते हैं। सिर्फ साँसें चलती रहती हैं।

शून्यता के अहसास से शुरू हुए वचपन में हम बिना कारण के ही खुश रह लेते थे, हँसते थे और इसी हँसी से अपनों को खुशी भी देते थे। नींद में मुस्कराते थे तो बड़े कहते थे कि भगवान से



बात कर रहे हैं। भोले-भाले से हम। यह भोलापन इसी शून्यता की देन था। सभी से दोस्ती। बैर को तो जानते भी न थे। किसी को नुकसान पहुंचाने की सोच भी नहीं सकते थे। अगर गलती से किसी को हमारी बात बुरी लग भी जाती, तो बिना किसी लाग-लपेट के माफ़ी भी माँग लेते थे। कभी-कभी तो कान पकड़ कर भी! किसी भी बात का बुरा न लगता और अगर लगता भी तो किसी के ज़रा से फुसलाने भर से फिर मुस्कुरा उठते। धोखा देना किसे कहते हैं, यह पता भी न था। किसी के भी साथ खेलने लगते। पल में हार जाते तो दूसरे ही पल में थोड़ी-सी मासूम बेईमानी से फिर जीत जाते। खेल को खेल ही समझते। हार में भी खुश और जीत में भी। थक जाने से नींद आती थी। छोटी-छोटी ज़रूरतें... जिनको पूरा करने में कोई परेशानी नहीं होती थी। न बुराई लेते और न देते। किसी की भी सुन लेते थे। हिसाब नहीं सिर्फ़ किताबों से वास्ता था। हिसाब का तो दूर-दूर तक पता नहीं था। न मान का 'मान' और न ही अपमान का 'दंश', यही शून्यता होती है। जहाँ सब बराबर होते हैं। यही हमारा स्वरूप होता है। बिलकुल पानी की तरह, जहाँ हो बह चले। जो चाहा आकार ले लिया। अपनी जगह बना ली। हर जगह समा जाते।

फिर बड़े होने लगते हैं। सपनों में आने वाला भगवान न जाने कहाँ खो जाता है। उसकी जगह ख्वाहिशों से भर जाती है। जब भारी हो जाती हैं, तो यही ख्वाहिशें सपनों से बाहर निकल कर नींद उड़ाने लगती हैं। अब नींद में भगवान नहीं मिलते हैं, तो उनसे बात नहीं हो पाती। आँखें भारी हो जाती हैं, लेकिन उन आँखों में नींद कहाँ? नींद ही न हो, तो, फिर नींद में हँसी कहाँ? हँसी आने कि वजह माँगती है और वजह मिल जाए, तो, जगह नहीं मिलती। जगह मिल जाए, तो साथ नहीं मिलता। अकेले हँसे तो लोग पागल समझेंगे, यही भाव मन में समा जाता है। अब भाव को निकलने

को जगह तो चाहिए। हँसी नहीं तो गुस्सा ही सही। बात-बात पर खीजने लगते हैं। चिढ़चिढ़े हो जाते हैं। बचपन का भोलापन बहुत पीछे कहीं छूट जाता है। इसी के साथ दोस्त-नातेदार भी पीछे छूट जाते हैं। सफ़र अकेले तय करने का भार साथ ले लेते हैं। अपनी दुःख-तकलीफ़ किससे बाँटे? कोई बचा ही नहीं। हर कोई अपने भार की गठरी उठाये अकेला ही तो चलता, हाँफता मिलता है। अकेले ही खुद का भार उठाना पड़ता है।

खेलते अब भी हैं, लेकिन दाँव इतने बड़े हो गए होते हैं कि अब हार पचती नहीं। हार हरा देती है। हार के दौर में जीत की चाहत का भार उठाना कठिन होता है। इसी चाहत का भार अब बेईमानी के रास्ते पर ले जाता है। मासूमियत खो चुकी है। जानबूझ कर की हुई बेईमानी की ग्लानि का अपना भार इतना अधिक होता है कि अपने आप से चिढ़ होने लगती है। अब तो चिढ़ का भार भी उठाना पड़ता है।

हम छोटी-छोटी बातों पर बुरा मानने लगते हैं। किसी के किये छोटे-से मज़ाक का बुरा मान जाते हैं। मनाने पर आसानी से मानते भी नहीं। माफ़ करना मुश्किल लगने लगता है और इसीलिए भार में रहते हैं। जीवन में छोटी-छोटी बातों पर आनंद लेना भूल से जाते हैं। इसी में रिश्तों को भूल जाते हैं। अपनी ग़लती मानते नहीं और मान भी लें, तो माफ़ी माँगना छोटेपन का अहसास कराता है। माफ़ी माँगने को दिल तो करता है, लेकिन अहंकार का भाव आड़े आ जाता है। परिनिंदा में आनंद आने लगता है। इसी में अपनी जीत का अहसास करने लगते हैं। यह अहसास थोथा ही सही, लेकिन भारी होता है।

कितने ही भार अपने ऊपर लिए चलते जाते हैं। लेकिन भार लेकर कितनी दूर चल पाते हैं? थक जाते हैं। टूट जाते हैं। हताश हो जाते हैं। निराशा घेर लेती है। अवसाद मन में बैठ जाता है। किसी से बात करने को दिल नहीं करता। अकेले से एक द्वीप समान हो

जाते हैं। सबसे अलग-थलग। मन रोता है, लेकिन आँसू आँखों के ख़ाली भवर में कहीं गुम हो जाते हैं। सब कुछ छोड़ देने कि इच्छा होती है, लेकिन हिम्मत साथ नहीं देती। दिन में भी अँधेरा सा लगता है। भँवर में सहेज कर रखे आँसू सूखे नहीं थे। अब उबलते हैं और आँखों की पोर में भर जाते हैं और दिखना बंद हो जाता है। ठोकरें खाते हुए, ठौर को ढूँढते-ढूँढते, साई के चरणों पर हाथ चला जाता है। गिरते हुए वही थाम लेते है। उसको पुकारो तो सही। दिल से।

साई के पैरों पर सिर रख कर जब सच्चे दिल से इस अँधेरे से मुक्ति की चाह व्यक्त करते हैं, तो साई धीरे-से अपना हाथ हमारे सर पर रखते हैं। कान में धीरे से बोलते हैं कि अपना भार मुझ पर छोड़ दो और हमारा भार साई ले लेते हैं। हम बदलने लगते हैं। पोर में जमे आँसू का झरना बह निकलता है और उसके साथ ही हमारे सारे भार भी बह जाते हैं। किसी सालों पुराने हिमखण्ड के समान। सैलाब आ जाता है। सारे भार बह निकलते हैं। अपनी की हुई गलतियों का अहसास होने लगता है। अपनों से माफ़ी माँगने में अब झिझक नहीं होती। कहा-सुना माफ़ करना भी मुशिकल नहीं लगता। जानते तो थे कि न जाने कौन-सी साँस आखिरी हो, लेकिन अब मानने भी लगते हैं। न जाने कितना वक्त बचा है! अब कौन लड़े दुनिया से? दुनिया की नसीहत, जो अब तक सिर्फ़ दूसरों को देते थे, पर अमल करने का दिल चाहता है। फिर बच्चा बनने को दिल मचल उठता है। हँसी एकदम से तो नहीं आती, लेकिन अधरों का सूखा रेगिस्तान मुस्कान की हरियाली से लहलहा उठता है। मासूमियत भी एकदम से नहीं आती, लेकिन से ईमानदारी लौटती राह पर, फिर बाँहें फैलाए खड़ी मिलती है। बात-बात पर झल्ला उठने वाले हम, अब संभल कर बात करने लगते हैं। स्वार्थ कब परमार्थ में बदल जाता है, पता ही नहीं चलता। निंदा का स्वरूप भी बदल जाता है। अब निंदा किसी की बुराई का बखान नहीं, किसी में सुधार के लिए



करते हैं। अपनी निंदा पर तो, अब सिर्फ मुस्कुरा देते हैं। मानो दिल को अब ये पता है कि शब्दों के बाण से कैसे बचना है। लड़खड़ाते पैरों में नई लचक आ जाती है। बुझती आँखों के दिए जगमगाने लगते हैं। नींद बिना किसी दवाई के आने लगती है। चैन लौट आता है और सपनों में भगवान से मुलाकातें भी अब होने लगती हैं। अब कोई कैसे मुस्काए बिना रह सकता है? शून्यता का सफ़र फिर शुरू हो चुका है। साई का वचन भी शून्य की तरह अनंत सत्य है।

❀ बाबा भली कर रहे.. ❀

श्री सदगुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।



• बाबा का नवाँ वचन •

आ सहायता लो भरपूर,
जो माँगा वह नहीं है दूर।





श्री साई बाबा का यह वचन उनके कल्पद्रुम, मंशापूरण कल्पवृक्ष या कल्पतरु सरीखा होने का परिचायक है। यह किसी से नहीं छिपा है कि साई बाबा ने सशरीर रहते हुए तो सदा ही अपने भक्तों के दुःख दूर किये और आज भी, जब वह सशरीर नहीं हैं तब भी, वे हम सभी की सुनते हैं और हमारे कष्टों का निवारण करते हैं। आज भी वे हमारे मन की मुराद पूरी करते ही रहते हैं। हमारे होंट हिलते भी नहीं कि बाबा हमारी इच्छा पूरी कर देते हैं।

हमारे मन में सहज ही यह विचार कौंध जाते हैं कि यह कैसे संभव है कि वो परम, दिव्य आत्माएँ जिन्हें हम देवता या भगवान अथवा सिद्ध पुरुष मानते हैं, हमारी इच्छाएँ पूरी कर देते हैं, जबकि वो तो हमें दिखते भी नहीं हैं! जब वे हाड़-माँस में हैं ही नहीं, तो यह कैसे संभव है कि वे हमारी मुरादें भी पूरी कर सकते हैं? यह विचार मन में सहज ही आ जाते हैं। कई बार जब मन की होने में समय लगता है तो उनके अस्तित्व पर भी संदेह, यही भिक्षुक मन उठाता है। सच ही तो है। हमारी बुद्धि, महत्त्व-बुद्धि है। जिस वस्तु में, अस्तित्व में हमें अपना स्वार्थ सिद्ध होता दिखाई पड़ेगा, उसी को हमारा मन स्वीकार कर, महत्त्व देना शुरू कर देगा। इसके ठीक उलट, अगर हमारा स्वार्थ कहीं सिद्ध नहीं हो रहा है तो हम उस ओर देखेंगे भी नहीं। स्वार्थ जो करवा ले वो कम है।

ईश्वर की बनाई हुई इस सृष्टि में कई सारी समय-रेखाएँ समानांतर चल रही हैं। यह भौतिक-शास्त्र का नियम है। हमें लगता है कि समय गुज़र रहा है, लेकिन सच तो यह है कि उस चलायमान समय-रेखा पर हम खड़े रहते हैं। दृश्य बदल जाते हैं। साथी बदल



जाते हैं। संगी बदल जाते हैं। परिस्थितयाँ बदल जाती हैं। हम गुज़र जाते हैं और फिर कहीं और किसी अन्य समय रेखा पर अपने आप को पाते हैं। नए परिवेश में, नए लोगों के मध्य, नए रूप-रंग के साथ। नई योनी में। नया जन्म। पुर्नजन्म। यही सत्य है।

ऐसी ही समय-रेखा पर वे पवित्र और दिव्य आत्माएँ भी निरंतर बहती रहती है। मानव अवतार रूप में, साई भी ईश्वर की समय-रेखा पर हैं और हमसे अभी इतनी दूर नहीं गए हैं कि उन तक हमारी आवाज़ पहुँचने में देर लगे। आखिर समाधि लिए हुए उन्हें अभी समय ही कितना हुआ है! सौ साल और कुछ ऊपर। ईश्वर की अनंत समय-रेखा में तो यह काल, धूल के एक कण के बराबर भी नहीं है। साई तो हमारे बहुत ही पास हैं। इतने पास कि इधर हम सोचते हैं और वे सुन लेते हैं। हमारा भाव भी एक ऊर्जा है। जब मानसिक वेग के साथ यह ऊर्जा हम किसी को भेजना चाहते हैं तो यह एक कंपन के रूप में सामने आती हैं। समय रेखाओं पर हमारे भाव का कंपन हमारे साई तक बहुत ही जल्द पहुँच जाता है। वही कंपन उन्हें झंझोर देता है। वे हमारी ओर देखते हैं। हमें महसूस भी होता है। उनकी टोह लेती नज़रों का हमें आभास भी होता है। हम उन्हें पुकारते हैं और वे सुन लेते हैं। वे भी पलट कर हमें सहायता दे देते हैं। भाव का वेग उन तक जल्द पहुँच जाता है।

फिर प्रश्न उठता है कि क्या हम सभी को इस परमतत्त्व की सहायता लेने की ज़रूरत पड़ती है?

ईश्वरीय राज्य का एक छोटा-सा भाग है यह पृथ्वी। उसके कुल अनंत सृजन का शायद सौवा या फिर हज़ारवाँ या फिर लाखवाँ हिस्सा भी हो सकती है। ईश्वर तो सकल ब्रह्माण्ड के नायक है। उसकी इस अनुपम कृति का कितना भाग ही हमने देखा होगा? जो सारी दुनिया देखने का दावा भी करता है वह भी इस सृष्टि का एक कण ही है। अगर कभी हमने अंतरिक्ष में स्थापित उपग्रहों से खींचे



पृथ्वी के चित्र देखे हों तो, हमें समझ में आएगा कि कई हज़ारों मील ऊपर से लिए गए चित्र में तो पृथ्वी एक छोटे-से गोले समान नज़र आती है और उस गोले में तमाम द्वीप, महाद्वीप, सागर, महासागर भी छोटे से कण समान नज़र आते हैं। अगर हम अपने आप को उस चित्र में ढूँढने भी जाएँ तो शायद पेंसिल की नोक से बने एक छोटे से बिंदु से अधिक हम कुछ भी नहीं होंगे। शायद उतने भी नहीं। यही हमारा सही अस्तित्व है। यही सच्चाई है कि उस ईश्वर की परमसत्ता में हम तो बहुत ही छोटे हैं। इस सच्चाई को अनदेखा कर अपने अहंकार के चलते, हम तो अपने आप को सर्वशक्तिमान मान कर चलते हैं, जो कभी ख़त्म होंगे ही नहीं। भूल जाते हैं कि एक साँस की देर है। 'हे', 'था' बन जाता है। नाम भी छिन जाता है और हम भी अपने आप से दूर हो जाते हैं। अहंकार तो राख बन कर उड़ जाता है। मिट्टी फिर मिट्टी बन जाती है। अनंत में खो जाती है। ईश्वर की समय-रेखा पर हम क्षणिक हैं। बस यही स्थाई सच्चाई है। जब हम क्षणिक हैं तो हमारा जलवा, अहंकार, धन-दौलत, संपत्ति-विपत्ति, परिवार सभी कुछ क्षणिक है। जब तक हम हैं, हमें इनके होने का भ्रम रहता है। समय साक्षी है कि या तो हम उन्हें छोड़ चलेंगे या वो हमें छोड़ देंगे। इसी मिलने-बिछड़ने के क्रम में सभी को सहायता की ज़रूरत पड़ती है। कोई न कोई इच्छा अपूर्ण रह जाती है। जिनसे दुःख उत्पन्न होता है। जिनको हमने अपना सहारा माना था वो तो अब कोई भी नहीं हैं। समय-रेखा के इस नए मुकाम पर तो हम एकदम अकेले हैं। सहारे छिन जाने पर अकेलापन महसूस होता है। आवाज़ देते हैं पर कोई सुनता नहीं तो कोई सुन कर अनसुना कर देता है। इस दुनिया में हर कोई कभी न कभी तो ऐसे मुकाम पर पहुँचता है जब कोई साथ देने वाला या मदद करने वाला उसके पास नहीं होता। नितांत अँधेरा। हाथ को हाथ नहीं सूझता। सभी को कभी न कभी सहारे की ज़रूरत तो पड़ती ही है।



क्यों हमें सहायता की आवश्यकता पड़ती है? हम सभी जानते हैं कि हम सभी अपने पुराने संचित कर्मों के अधीन रहते हैं। यही चाहे-अनचाहे, जाने-अनजाने किये हुए कर्म हमें नियंत्रित करते हैं और इन्हीं कर्मों का फल हमारे प्रारब्ध को, निर्मित करता है। इन्हीं कर्मों का यह फल हमें एक निश्चित दिशा में धकेल देता है, उस राह पर, जिस पर हमें स्वयं ही समझ नहीं आता कि हम खुद-ब-खुद कैसे चल पड़ते हैं। इसी राह पर चलते-चलते और अपने किये हुए कर्मों का अच्छा-बुरा फल भोगते हुए, जब हम ऐसी परिस्थिति में फँस जाते हैं कि हमें कोई राह न सूझती हम रुक जाते हैं, अटक जाते हैं। कर्मों के फल स्वरूप कुछ परिस्थितियाँ ऐसी निर्मित हो जाती हैं कि हमें कुछ भी सूझ नहीं पड़ता। इनसे पार पाना हमें सहज ही नहीं सूझता। दुनिया में बहुत कुछ है जो हमारी सहज बुद्धि और पराक्रम से बहुत परे है। ऐसी जगहों पर पहुँच कर हमारी बुद्धि और इच्छाशक्ति भी जवाब दे देते हैं। सोच पर पड़े परदे से आगे की राह में अँधेरा छा जाता है। ऐसी परिस्थिति दलदल के समान होती है। जितने भी हम हाथ-पैर चलाते हैं, उतने ही इस दलदल में धँसते जाते हैं। साँस फूलने लगती है, हाथ-पैर भारी हो जाते हैं। इच्छा होती है कि इनको काट कर फेंक दें। शायद तब फिर दलदल से निकलने का कोई रास्ता मिल जाए। हाथ-पैर तो हम काट नहीं सकते हैं क्योंकि वही तो, वो इच्छाएँ हैं जिनसे परे हो पाना हमारे लिए संभव नहीं होता है और निढाल हो जाते हैं। दंभ कभी का पीछे छूट चुका होता है। अहंकार चूर हो चुका होता है। अभिमान का सिर झुका होता है। रह जाते हैं, सिर्फ हम। निढाल। असहाय। अब तो इंतज़ार है कि कब यह दलदल हमें निगल जाए और हम उसके अंदर डूब जाएँ। वो भी नहीं होता। दलदल अंदर खींचता है तो उखड़ती साँसें फिर जोर मारने लगती हैं। आशा की किरण डूबने भी तो नहीं देती। साईं की याद ऐसे ही क्षणों में आती



है। जब कोई नहीं आता, मेरे साई आते हैं। समय-रेखा पर उनको हमारी आवाज़, हमारे भाव का कंपन सुनाई दे जाता है। वे पलटते हैं, दलदल के किनारे आ कर खड़े हो जाते हैं। अपनी करुणामयी आँखों से हमें देखते हैं। मानो पूछ रहे हों कि हमने अपना ये हाल कैसे कर दिया? उनकी आँखों से बहता करुणा का झरना हमारे तमाम सवालियों का जवाब हमारे अंदर से ही निकालता है। हमारी आँखों से जवाब के रूप में वही झरना बह निकलता है। झरने से झरना मिलता है। दरिया बन जाता है। करुणा का हस्तांतरण हो जाता है। दलदल की कीचड़ से सने हम यह महसूस भी नहीं कर पाते कि हम तो कब के साई की उस करुणा के साफ़ पानी में तैरने लगे हैं। जब अहसास होता है तो महसूस होने लगता है कि दलदल में तो, हम व्यर्थ ही गए थे। जब कर्मों के अधीन हम उनके सम्मोहन में बंधे हुए झूठ और फरेब के रास्ते पर चलते जा रहे थे तो क्यों तब, हमने साई से मदद नहीं माँगी? तब क्यों हमने उनके नाम की गुहार नहीं लगाई? क्यों हम व्यर्थ से आकर्षणों के मोहपाश में फँसते चले गए? तब क्या हमारे पास कोई और रास्ता नहीं था? क्यों हम अहंकार और मोह-माया के छद्म, मायावी और अस्थायी आवरण को ओढने के पीछे भाग रहे थे? फिर हम जवाब देते हैं कि क्या तब साई आस-पास नहीं थे, जो वे हमें रोक लेते? वे तो थे। ठीक वहीं पर जहाँ आज हैं, लेकिन हम ही ने तो उनको अनदेखा कर दिया। हम ही ने उनकी नहीं सुनी। हम ही ने उन्हें मात्र अपनी इच्छापूर्ति का माध्यम समझ रखा था। उन्होंने तो हमें वही दिया, जो हमने उनसे माँगा। किसे पता था कि जिसे हम सुख समझ रहे हैं, वो दुःख का बीज है। जिसे हमने अपने आनंद का कारण मान लिया था वो तो असल में दुःख का थोथा आवरण था। सच तो यह है कि महत्त्वकांशा के अंधे घोड़े पर सवार हम, अपने विवेक की आँखों पर पट्टी बाँध लेते हैं। साई का दरबार तो खुला है। हमने उनसे माँग



लिया हमें वो मिला जिसकी हमने इच्छा की। कभी पलट कर उनकी मर्जी जानने की कोशिश भी नहीं की, कि वो हमें क्या देना चाहते हैं। अगर उनकी ओर पहले देख लेते, कान उन्हीं की बात पर लगा लेते कि वे क्या कहना चाहते हैं, तो दलदल की ओर पाँव मुड़ते ही नहीं। उनकी चलने की कहाँ की हमने? अगर उन पर ही छोड़ देते तो क्या कुछ नहीं मिलता? वे देने के लिए दरिया ले कर बैठे हैं और हमने उनसे चुल्लू भर पानी माँग लिया। वे चैन की नींद देना चाहते थे, हमने उनसे धन के बिस्तर पर जगराते माँग लिए। उन्हें तो हम मंदिर-मस्जिद-गुरद्वारे में ढूँढते रहे, लेकिन वे तो ठीक हमारी नज़रों के सामने थे। हम ही अपने आप में नहीं थे।

अब भी देर नहीं हुई है। वे अब हाथ बढ़ाते हैं। अपना हाथ बढ़ाते हुए, साफ़ पानी में तैरते हम साईं से अब भी तो, कह सकते हैं कि बहुत हो गई हमारे मन की। अब अपनी मर्जी से आप ही हमें रास्ता दिखाइए। उनकी राह में कोई भूल नहीं, कोई छल नहीं। साईं जब देने बैठे तो उनकी सहायता माँग लो। वे जो हम चाहते हैं, लेकिन समझ नहीं पाते वो तो साईं के ख़ज़ाने में सर्वदा सुलभ है। उनकी मान लेते तो कभी अकेले न पड़ते। वे तो सदा सहाय है। हम ही छद्म जीवन जीना चाहते थे। उनका हाथ तो सदा हमारे हाथ में था। हम ही छुड़ा कर भाग लिए थे। जब वो देते हैं तो मुँह से बरबस ही निकल पड़ता है क्या-क्या हम साईं से माँगना चाहते थे और साईं ने हमें क्या-क्या दे दिया है! यही उनकी वो सहायता है जो हमसे कभी भी दूर नहीं है।

इस वचन की सबसे बड़ी खासियत है कि यह हमें साईं की सदा सहायता देने की प्रवृत्ति से रुबरु करवाता है। हमारी लालच की वृत्ति को साईं पूरा करें या न करें, लेकिन जब भी हम साईं से सहायता की गुहार लगाते हैं तो साईं अवश्य ही सुनते है। एक सच्चे मित्र की तरह साईं सदा हमारे नजदीक होते हैं। वे सिर्फ़ सुनते ही



नहीं हैं, सहायता का अभयत्व भी प्रदान करते हैं। यह वचन बाबा कि सर्वव्यापकता से भी हमें परिचित कराता है। यह वचन बताता है कि जब भी हमें सहायता की ज़रूरत पड़ेगी, साई हमें कभी भी निराश्रित छोड़ निराश नहीं होने देंगे। भला माँ कभी अपने बच्चों से दूर हुई है! साई तो हमारी माँ हैं।

🌸 बाबा भली कर रहे... 🌸

श्री सद्गुरु साईनाथर्पणमस्तु। शुभं भवतु।



• बाबा का दसवाँ वचन •

मुझ में लीन वचन-मन-काया,
उसका ऋण न कभी चुकाया।





श्री साई बाबा का यह वचन बाबा के सरलतम स्वभाव और आसानी से प्राप्य होने की गवाही देता है। हम भले साई बाबा को अपने विश्वास और मान्यता अनुसार ईश्वर, भगवान अथवा सद्गुरु मानें, लेकिन साई बाबा ने तो सदा ही अपने आप को ईश्वर का दास कहा। **दासोहं या याद-ए-हक कहा करते थे साई अपने आप को।** ‘अल्लाह मालिक’ सदा उनके होठों पर रहता। उन्होंने कभी अपने आप को चमत्कार करने में सक्षम महापुरुष अथवा सिद्ध पुरुष नहीं बताया। जिन्हें हम चमत्कार समझते हैं वो तो साई की सहज कार्यप्रणाली है। किसी से अगर दक्षिणा भी माँगते तो सदा कहते कि यह तो मस्जिदमाई का ऋण है जो वह माँग रही है। उन्होंने कभी अपने आप को भक्तों से परे नहीं रखा या कोई ऐसा आचरण कभी नहीं किया जिससे कि लगे कि वो किसी और ग्रह से हैं।

मराठी नाटकों में द्विअर्थी संवादों का रसास्वादन करने और लिखने वाले पुलिस कांस्टेबल गणपतराव दत्तात्रेय सहस्त्रबुद्धे जब बाबा की इच्छा, आदेश और असर से बदल गए और जब पुलिस की नौकरी से निकाले जाने के बाद उन्होंने बाबा के दिए हुए नए नाम दासगणु से अन्य संतों और साई बाबा पर कई ओवियों, छंदों, दोहों इत्यादि को अपनी धार्मिक पुस्तकों में संकलित किया और जब वो बाबा पर कीर्तन करने लगे तो ईश्वर स्वरूप साई ने उनसे कहा कि वो (साई) तो उनके (दासगणु) के दासानुदास - दास के अधीन रहने वाला दास हैं, क्योंकि दासगणु उनके गुणगान करते हैं। क्या स्वभाव की सरलता है? क्या साई का यह आचरण विनयशीलता और नम्रता की मिसाल नहीं है? क्या कभी हम अपने आचरण में इस विनयशीलता का समावेश कर सकेंगे? हमें तो ज़रा कुछ मिल



नहीं जाता कि हम तो फूल कर कुप्पा हो जाते हैं। अपने आपे से बाहर रहने लगते हैं। अहंकार के नशे में बहक जाते हैं। संतों के चरण पकड़ना तो सब चाहते हैं, लेकिन उनके आचरण पकड़ना सच में मुश्किल होता है। उनके आचरण को पकड़ने के लिए हमें मनसा-वाचा-कर्मणा को साई में एकाकार करते हुए साई की प्रकृति में मिल जाना होगा।

यह ईश्वर की बनाई सृष्टि है जो उसी के निर्धारित किये हुए नियमों से चलती है। उसके नियमों के 'संविधान' को हम 'प्रकृति' कहते हैं। हम चाहें भी तो अपना नुकसान किये बिना इसके विपरीत नहीं जा सकते हैं। जब-जब भी हमने प्रकृति के नियमों का अपमान अथवा अवहेलना की है, हमने अपना और मानवता का नुकसान किया है, जिसकी भरपाई हमें अपने कर्मों के फल के रूप में करना पड़ती है। ईश्वर की ही आज्ञा से जब यही प्रकृति हमारी परीक्षा लेने को आतुर होती है, तो माया के रूप में अपने आप को उजागर करती है। प्रकृति नित्य है, माया अनित्य है, क्षणिक है। प्रकृति सत्य है तो माया छद्म है। मोहिनी अथवा मिथ्या। प्रकृति को तो पाया जा सकता है, माया तो छकाती है। प्रकृति शांत करती है तो माया अशांत। प्रकृति को बिना परिश्रम के पाया जा सकता है तो माया कठोर परिश्रम के बाद मिलते ही ओझल भी हो जाती है। प्रकृति से मिलन की परिणिति सुख में होती है तो माया से मिलन का अंत दुःख में होता है। प्रकृति नित्य है, अनंत है। माया चंचल और परिवर्तनशील है। प्रकृति ईश्वर के समीप ले जाती है और अंत में एकाकार करवा देती है तो माया ईश्वर से दूर कर के अधीर और व्याकुल कर देती है। जब भी हमारे अंदर विवेक का नाश होता है तो प्रकृति हमें माया के रूप में मिलती है। विवेक जागृत रखने से ही प्रकृति और माया में भेद समझ आता है।



प्रकृति के संसर्ग में रहने के लिए मनुष्य का मन, वचन और काया का संगठित हो संतुलन में रहना नितांत आवश्यक है। कर्म की पगडंडी पर चलते हुए अगर इनका संगठन और संतुलन बिगड़ गया तो हमारी राह बदल जाती है और हम माया की ओर अग्रसर हो उठते हैं। वचन, मन और काया को समझने का प्रयास करना साई बाबा के इस वचन को समझने के लिए आवश्यक है। जब तक हमें यह समझ नहीं आयेगा कि वचन, मन और काया क्या हैं? हमें क्यों मिले हैं और कैसे यह हमें साई की ओर मोड़ सकते हैं? हम साई बाबा के इस दसवें वचन को समझ नहीं पाएंगे।

साधारण भाषा में समझें तो वचन उस प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष क्रिया को कहते हैं जो हमारे कर्मों को किसी ध्येय के प्रति दृढ़ करती है। किसी बात को करने की ठान लेना अपने आप को वचनबद्ध करना है। इसे जब बोल कर प्रकट कर दिया जाए तो यह प्रत्यक्ष हो जाता है और जब इसे मन में ही अप्रकट रखा जाए तो यह अप्रत्यक्ष हो जाता है। इसे हम एक प्रकार से शपथ लेने जैसा भी मान सकते हैं। वचन किसी और से भी किया जा सकता है और अपने आप से भी। वचन संकल्पित कर देता है। जब तक संकल्प पूरा न हो तो सिद्धि संभव नहीं होती है। बिना संकल्प के जीवन में कभी कुछ भी नहीं पाया जा सकता है। ईश्वर ने संकल्प-शक्ति हमें दी है और उसे हमारे मन के अधीन किया है। यही संकल्प-शक्ति वचन को नियंत्रित कर कर्मों की ओर अग्रसर करती है। ध्येय में अखण्ड निष्ठा, वचन को फलीभूत करती है। संकल्प में शुद्धता, वचन को पवित्र करती है। वचन यदि पवित्र नहीं है तो कर्म कभी शुभ और फलदायी नहीं हो सकते। स्वार्थ और कपट वचन को अपवित्र कर देते हैं। वचन में परमार्थ मोक्ष की राह प्रशस्त करता है। निःस्वार्थ कर्म और ध्येय में निर्मलता वचन का रूप निखार देते हैं। वचन में पवित्रता किसी भी कर्म को पूजा में परिवर्तित कर देती है और वचन के रूप में



की गई पूजा ही साईं के प्रति, वचन को साईं में लीन करती है। वचन की शुद्धता ही साईं की ओर ले जाती है। यही साईं से मिलन की राह खोलती है। शुद्ध वचन ही साईं को प्राप्य बनाते हैं। वचन क्रियारूप में मन ही है।

मन हमारे मस्तिष्क का वो प्रकार है, जो हमारे विवेक को नियंत्रित कर हमारे कर्मों को दिशा देता है। मन ही हमारी चिन्तन-शक्ति, स्मरण-शक्ति, निर्णय-क्षमता, बुद्धि, भाव और व्यवहार को नियंत्रित करता है। मन ही वह शक्ति है, जो किसी ज्ञान को हमें ग्राह्य कराती है। मन ही सोचने और समझने का कार्य करता है। मन मस्तिष्क की शक्ति है और धुरी भी। जिसके द्वारा सभी क्रियाकलापों को क्रियान्वत किया जाता है, वह मन कहलाता है। इसी से जीवन को मार्गदर्शन प्राप्त होता है। यही मन प्रेम भी कराता है और बैर भी, यही राग और द्वेष का कारक है। यही मन क्रोध की उत्पत्ति का कारक है तो यही मन अहंकार को ज़मीन भी देता है। यही मन दुनिया में भी रमाता है और यही मन उद्वेलित भी करता है। मन के अंदर एक सूक्ष्म हिस्सा रहता है जिसे हम अर्न्तमन कहते हैं। मन यदि अशांत करता है तो अर्न्तमन शांति की राह खोलता है। मन भटकाता है तो अर्न्तमन साईं से मिलवाता है। मन दुःखी करता है तो अर्न्तमन दुःखों का शमन करता है। मन अमित करता है तो अर्न्तमन सही राह पर ले जाता है। सत्य की राह दिखाता है। अर्न्तमन ही मस्तिष्क की चेतना है। यही उसका ऊर्जा स्रोत है। मन दुनियादार बनाता है तो अर्न्तमन आध्यात्मिक राह खोलता है। समाज के सुख-दुःख, घर-परिवार, देश-दुनिया सभी से मन प्रभावित होता है और दुःखी भी, लेकिन जब मन को चीरते हुए, सद्गुरु साईं का हाथ पकड़े हुए, हम अर्न्तमन की यात्रा प्रारंभ करते हैं तो यह छद्म दुःख क्षीण होते हुए, परम सुख-शांति और आनंद की अनुभूति करवाता है। जीवन को मन से मत जोड़ो, अर्न्तमन से जोड़ो। यह

चिरस्थायी आनंद यात्रा की पदस्थली है। मन का सौंदर्य विवेक है जो अंतर्मन से जुड़ कर मिलता है। यही अन्तर्मन है, जिसको हम भगवान कहते हैं। यही वो अप्राप्य चरम है जिसकी खोज में हम जन्म-जन्म भटकते रहते हैं।

मन तो अद्भुत कृति है 'साई' की। दिखता नहीं है, अदृश्य रहता है, लेकिन समस्त जीवन के सारे सूत्र इसी के पास रहते हैं। बिजली की तेजी से यह कौंधता है और अदृश्य को देख भी सकता है, सुन भी सकता है और महसूस भी कर सकता है। फूल जाए, तो मन 'मान' हो जाता है। अहंकार का पर्याय बन जाता है। जड़ हो जाता है। जब नियंत्रण में न रहे, तो वमन हो जाता है। सूक्ष्म हो जाए, तो चैतन्य को पा लेता है। जब दूसरों को दबा दे, तो दमन हो जाता है। दुनिया में भटके, तो यह भ्रमण हो जाता है और ईश्वर में घूमे, तो यह रमण बन जाता है। शांति को पा लेता है तो, यह अमन हो जाता है और अगर दूसरों के काम आ कर अपनी सुगंध से दूसरों को महकाता है तो, यह सुमन हो जाता है। यही मन जब ईश्वर को पा कर उसी में शांति पा लेता है तो, यह नमन हो जाता है। यही मन के भेद हैं जो सिर्फ मन जानता है या फिर साई। मन साई का मंदिर जो है।

मन का निवास काया में होता है। काया ही तो साई से दूर करती है या फिर साई से मिलवाती भी है। काया ही तो साई से मिलन में सबसे बड़ी बाधा है या फिर साधना है। हम लोग साधारणतया: काया से शरीर समझते हैं। काया स्थूल शरीर है, जो दिखलाई पड़ता है और साथ ही में सूक्ष्म शरीर है, जो मन का वास्तविक घर है। यह दिखलाई नहीं पड़ता। स्थूल शरीर को नियंत्रित सूक्ष्म शरीर करता है। स्थूल शरीर नाशवान होता है। सूक्ष्म शरीर अमिट होता है। स्थूल शरीर जड़ होता है। उसमें चैतन्य सूक्ष्म शरीर से आता है। स्थूल शरीर हाड़-मांस का बना होता है। सूक्ष्म शरीर परमात्मा का

अंश होता है। सूक्ष्म शरीर की पहचान स्थूल से होती है। लोग व दुनिया स्थूल को पहचानते हैं, लेकिन परमात्मा के दर पर हमारी पहचान केवल सूक्ष्म शरीर से होती है। यह सूक्ष्म शरीर आत्मा होती है।

काया ही आत्मा का निवास भी है। काया ही आत्मा को बाँधे रखती है। प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब काया ही नाशवान है तो फिर वो आत्मा को कैसे बाँधे रख सकती है? आत्मा तो अजर-अमर है। काया वो पिंजरा है जो आत्मा के आवरण का काम करती है। काया जब समाप्त हो जाती है तो, आत्मा नई काया में अपने कर्मों के लेखानुसार नए सांसारिक रिश्तों के साथ समा जाती है। हम समझते हैं कि हम वही हैं जो हम दिखलाई पड़ते हैं, लेकिन वास्तव में हम वो हैं जो हम दिखलाई नहीं पड़ते हैं। उस अदृश्य स्वयं को तो हमारे अलावा कोई भी नहीं पहचान सकता, लेकिन खुद को पहचानना सरल भी नहीं है। कई-कई जीवन निकल जाते हैं खुद से मिलने में। परमात्मा से मिलने तो हम मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारे-गिरजाघर घूमते रहते हैं, लेकिन भान नहीं होता कि पत्थरों की दीवारों में परमात्मा नहीं मिलता। उस तक पहुँचने के लिए खुद से हो कर जाना पड़ता है। काया को उसमें लीन कर देना होता है। बिल्कुल उस तरह लीन कर देना होता है, जैसे नमक की एक पोटली नदी में गिर जाए और जिस तरह नमक पानी में घुल जाए कि दोनों को अलग करना संभव ही न हो सके। जिस तरह पनिहारिन पानी का घड़ा सिर पर रख कर सबसे बातचीत करते हुए चलती तो है, मगर हर समय उसका पूरा ध्यान इस बात में ही रहता है कि कहीं घड़े में से पानी छलक न जाए। ऐसे ही सांसारिक कार्य करो, मगर करते हुए हर समय साईं का स्मरण करो। द्वैत भाव - मैं और परमात्मा अलग-अलग हैं यह भाव मिट जाना चाहिए।

लीन अवस्था क्या है? जो प्रतिक्षण, हर पल, हर जगह साईं की उपस्थिति का अनुभव करता हो। जो हर वस्तु में साईं के दर्शन



करता हो। जो हर व्यक्ति से ऐसे ही व्यवहार करे कि वह साई से व्यवहार कर रहा हो। जो प्रत्येक श्वास साई को समर्पित कर दे और जो प्रत्येक कर्म साई को समर्पित कर दे। जो साई को अपने अंदर महसूस करे और जो साई में जग को उस तरह ढूँढें जैसे वो जग में साई को ढूँढ रहा हो। जिसका भूत, वर्तमान और भविष्य साई ही बन गया हो। जो नींद में भी साई का साथ न छोड़े और जो खुद को साधक, साई को साध्य और काया को साधन मान ले। जो प्रत्येक क्षण अपने आप को साई के अपने अंदर जगाये रखे, मानो वो ही साई में लीन हो गया हो।

लीन कैसे हुआ जा सकता है? लीन होने के लिए सबसे पहले अपने सूक्ष्म शरीर का भान करना चाहिए कि यह ही असल 'मैं' हूँ। सिर्फ 'मैं'। जो दिख रहा है वो 'मैं' न था, न हूँ और न कभी होऊँगा। मेरे पहले भी मैं था और मेरे बाद भी 'मैं' रहूँगा। 'मैं' नष्ट नहीं होने वाला। 'मैं' अजर-अमर हूँ। मेरा कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। 'मैं' सदा ही हूँ। फिर इस सूक्ष्म शरीर को साई की अमानत मान कर उसे ही सौंप देना चाहिए। सर्व और स्व को अशर्त साई को अर्पण कर देना चाहिए। इससे भय मिटेगा और अभय उदित होगा। हर कर्म साई के लिए और साई को समर्पित करने के लिए ही करना चाहिए। इससे फल की लालसा मिटेगी। अपने पास जो कुछ भी है वो साई का है यह मान कर चलो। जो मेरे पास है वो मेरा नहीं है, क्योंकि जो मेरे पास है उसे मैं सदा अपने पास नहीं रख सकूँगा। सच्चाई तो यही है कि किसी दिन 'मैं' उसको छोड़ दूँगा या वो मुझे छोड़ देगा। यही सत्य भी है। इससे सुख और दुःख का भेद मिटेगा। दुःख आयेगा, लेकिन दुःखी नहीं करेगा। अहसास होगा कि दुःख तो अमृत है जिससे पाप धुलते हैं। सुख भी आयेगा, लेकिन मन विचलित नहीं करेगा। संतुलन बना रहेगा। यही बात रिश्तों पर भी लागू होती है। सारे रिश्ते हमारे नाशवान होने से नाशवान



ही हैं। हमारे ख़त्म होते ही रिश्ते भी ख़त्म। जब यह भाव मन में उठने लगता है तो मान लो हम लीन हो रहे हैं। हर क्षण भजन बन जायेगा, हर स्थान देवालय हो जायेगा, हर वस्तु प्रसाद बन जाएगी, हर कृति साई हो जाएगी। सिर झुका लो और शाँत हो कर बैठ जाओ। समझ लो कि करने वाला कोई और है। हम सिर्फ़ बहाना हैं। काम उसका और नाम हमारा। जो सौंपा गया है, उस काम को चुपचाप करो। जीवन माँगें करना भूल जायेगा। मन तड़पना और तड़पाना भूल जायेगा। जब लगने लगे की सारी इच्छाएँ पूरी होंगी तब यकायक महसूस होने लगेगा कि अब कोई इच्छा ही नहीं रही। न दीन रहेगा और न ही दुनिया। सब महत्त्वहीन लगने लगेंगे। साई और हम में भेद मिट जायेगा।

यही तो साई को हमसे चाहिए। मन, वचन और काया को जब हम साई में लीन कर देते हैं तो, हमें साई की लालसा हो उससे अधिक साई को हमारी लालसा हो उठेगी। उनके अहसानों के बोझ के तले हम अपने मन, वचन और काया, को साई में लीन कर उन्हें अपना ऋणी बना लेते हैं। भगवान का ऋण तो भक्त उन में लीन हो कर उतार सकता है, लेकिन भक्त को अपने अंदर पा कर भगवान उस ऋण को कभी उतार नहीं सकते। वे ऐसे भक्तों के सदैव ऋणी रहते हैं। साई को अपना ऋणी बनाना है तो, साई की उपस्थिति हर स्थिति में जानो। यही साई को पाने का मार्ग भी है और साई तक जाने का रास्ता भी।

❁ बाबा भली कर रहे... ❁

श्री सद्गुरु साईनाथर्पणमस्तु। शुभं भवतु।



• बाबा का ग्यारहवाँ वचन •

धन्य-धन्य वह भक्त अनन्य,
मेरी शरण तज जिसे न अन्य।





श्री साई बाबा का यह वचन किसी भी अवतार के भक्त पर आधारित अपनी पहचान के भाव को सुदृढ़ करता है। भगवान तो हमेशा भक्त से ही पहचाने जाते हैं। भक्त परमात्मा का अंश होने के बावजूद भी उस परम सत्ता की पहचान नहीं कर पाता। भक्त भगवान का विस्तार बन जाता है। भगवान के गुण उसके अंदर परिलक्षित होने लगते हैं, दिखलाई पड़ने लगते हैं। अनन्यता भक्त का वह गुण होता है, जिससे वह साई से, अपने आराध्य से, अपने इष्ट से एकाकार हो जाता है।

भक्त वो होता है, जिसकी अपने इष्ट के प्रति भक्ति कभी और किसी भी कारण से विभक्त न हो सके। तीव्र अव्यभिचारिणी भक्ति ही सच्चे भक्त की पहचान होती है। यह तो तय ही है कि जब कोई भी भक्त भक्ति के मार्ग पर चल पड़ता है तो उसे पग-पग पर परीक्षाओं का सामना करना पड़ता है। कुछ परीक्षाएँ तो उसका आराध्य लेता है और कुछ परीक्षाएँ उसे प्रारब्ध के कारण देनी होती हैं। हम न जाने कितने ही भक्त देखते हैं जिनकी भक्ति का केंद्र इन परीक्षाओं की जटिलता और आवश्यकताओं के आधार पर बदल जाता है। सोमवार को शिवार्चन तो मंगलवार को शक्तिस्वरूपा की आराधना। यही भक्त बुधवार को गणपति को प्रसन्न करने में लग जाता है तो गुरुवार को अपने गुरु की आराधन कर लेता है। शुक्रवार को लक्ष्मी माता की पूजा करता है तो शनिवार को शनिदेव की चौखट पर माथा टेकता है। रविवार को वह किसी और को पकड़ लेता है। जब उसका मन अस्थिर होता है तो तन की राह पकड़ लेता है। इनमें कोई आपत्ति नहीं है। जिसको जैसा अच्छा लगे वो करे, लेकिन यह शर्त है कि मन शांत हो कर एकाग्रचित्त हो जाए। पूजा चाहे जिस स्वरूप की



करो, लेकिन अपने विश्वास को एक जगह स्थिर कर लो। स्थिरता मन का स्वास्थ्य है।

साई की डगर हमें किसी भी अवतार अथवा आराध्य से विमुख होने के लिए उत्प्रेरित नहीं करती बल्कि, हमें सुझाती है कि हमें मानना सभी को चाहिए, लेकिन अपने विश्वास का एक केंद्र स्थिर कर लेना चाहिए। भक्ति भटकने का नाम नहीं है। भक्ति तो स्थिर हो जाने का प्रमाण है। भक्ति मन को शांत कर देती है, चित्त को आधार देती है और मन को आनंद के मार्ग पर डाल देती है। भक्ति अभयत्व प्रदान करती है। जैसे ही हम अपना विश्वास स्थिर करते हैं कि अब चाहे जो हो जाए, कितनी ही मुश्किलें पड़ें, अब हमें सिर्फ एक का ही सहारा है। अब वही हमें तारेगा। जैसे-जैसे यह विश्वास बढ़ने लगता है, मन का डोलना कम होने लगता है। विश्वास एकाग्रचित्त हो जाने पर हमारा मन स्थिर हो जाता है। फिर हम किसी भी परेशानी और परीक्षा से भयभीत नहीं होते। यह भय ही मन को अस्थिर कर देता है। भय के छट जाने से अभय का अरुणोदय होता है।

साई में भक्ति स्थिर हो जाने से सभी रूपों में, अवतारों में साई का ही दर्शन होने लगता है। उनका ही आधार मिल जाता है। उनके प्रेम का झरना प्रस्फुटित हो जाता है जिसमें हम सराबोर हो जाते हैं। इस झरने से न सिर्फ हमारे मन की प्यास बुझती है, बल्कि साई की ज्योति से हमारे अंधेरे मन में व्याप्त अंधकार लुप्त होने लगता है। समस्त परीक्षाएँ गौण हो जाती हैं, क्योंकि मन यह जानने और मानने लगता है कि हम कर्ता नहीं हैं। परीक्षा साई की है तो लेने वाला भी साई हुआ और देने वाला भी। मूल्यांकन करने वाला और परिणाम घोषित करने वाला भी साई ही हुआ। जब परीक्षा लेने और देने वाला साई हुआ, जब परिणाम घोषित करने वाला भी साई हुआ तो फिर मन में यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि परिणाम चाहे



जो भी हो, हमें नहीं भुगतना पड़ेगा। हमारी ओर से साई ही इस परिणाम को भोग लेंगे। भक्ति इसी विश्वास का नाम है। यही भक्ति का परिचय भी हुआ और भक्ति की परिभाषा भी। किसी भी परिस्थित में मन विचलित न हो, दुःख आए मगर दुःख, दुःखी न करे और सुख आए तो सुख अहंकारी न बना दे यही भक्ति का सार है। जिस भक्त में ऐसी भक्ति परिलक्षित होने लगे तो वह सच में भक्त के रूप में परिपक्व हो जाता है।

अपने इस ग्यारहवें वचन में साई बाबा ने ऐसे ही भक्त की भक्ति को नमन किया है कि ऐसा भक्त जो मुझमें अनन्य भाव से समाहित हो जाता है, जिसे किसी और की शरण में जाना श्रेयस्कर न लगे, जिसे साई के बिना चैन न पड़े, वह भक्त धन्य है। ऐसे भक्त बाबा को अत्यंत प्रिय होते हैं और बाबा इनके समस्त कर्मों के प्रभाव को क्षीण करने लगते हैं और उसे स्वयं से मिलने की राह खोल देते हैं।

भक्ति की कुछ अर्हताएं हैं जिनके बिना भक्ति अनन्यता की गति को प्राप्त नहीं कर सकती। ऐसी पहली अर्हता है कि भक्त भोला होना चाहिए। भक्त के मन में अपने आराध्य के प्रति छल-कपट अथवा स्वार्थ का भाव नहीं होना चाहिए। वह तो सतत भक्ति की धारा में प्रवाहित होते रहना चाहिए। उसे इस भक्ति से कोई प्रयोजन नहीं होना चाहिए। उसके लिए भक्ति निष्काम होना आवश्यक है। भक्ति के बदले किसी विशेष अनुग्रह की कामना नहीं होनी चाहिए। इस भक्त के लिए तो एकमात्र उद्देश्य अपने आराध्य की निकटता होना चाहिए। जहाँ भक्ति में कामना का समावेश हो जाता है तो भक्ति राह अवरुद्ध हो जाती है। भक्ति के बदले कामना रखने का अर्थ है कि भक्त को अपने आराध्य पर पूरा और अखण्ड विश्वास नहीं है। इनकी अनुपस्थिति में मन में यह भाव अनजाने ही उत्पन्न हो जाता है कि मेरे इष्ट को मेरी आवश्यकता का पता नहीं है। जब



भक्ति निष्काम हो तो मन में यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि मेरी हर आवश्यकता का पता मेरे इष्ट को है। मुझे कब और कहाँ किस वस्तु की आवश्यकता होगी, यह मेरे साईं को ज्ञात है और मुझे इस बात की चिंता करने का कारण नहीं है। अपने आप को जब हम साईं को सौंप देते हैं, तो हम साईं की ज़िम्मेदारी बन जाते हैं। ठीक उसी तरह जिस तरह आप पर आश्रित लोग अथवा वस्तुएँ आपकी ज़िम्मेदारी होती हैं। हम उनके लिए अपने आप को जवाबदेह मान सकते हैं। जब यह भाव मन में पनपता है तो, किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के हमारे चाहे हुए स्वरूप में अथवा समय पर मिलने अथवा नहीं मिलने पर कोई अवसाद नहीं उत्पन्न होता। हमारा अन्तर्मन जानता है कि साईं अपने चाहे हुए नियत समय पर हमें वो सभी कुछ उपलब्ध करवा देंगे, जिसकी हमें जब ज़रूरत होगी। समय भी साईं तो पता है और संख्या भी उन्हीं को। जब यह भाव स्थिर हो जाता है तो, मन अकारण उत्तेजित और उद्वेलित नहीं होता। और जब मन उत्तेजित और उद्वेलित नहीं होता तो, मन के भटकने का कारण भी मिट जाता है।

भक्त भीना होना चाहिए। जिस तरह किसी शिवलिंग के ऊपर लटके हुए कुंभ से पानी की महीन लगातार गिरती धार उसे सतत भीना रखती है, उसी प्रकार भक्त अपने आराध्य की भक्ति में, उसके प्रेम में, सदा भीना रहना चाहिए। प्रेम सदा ही निस्वार्थ होता है। जहाँ प्रेम है वहाँ स्वार्थ नहीं और जहाँ स्वार्थ है वहाँ प्रेम नहीं, वासना होती है। प्रेम कभी अधिकार नहीं जताता, वासना सदा अधिकार माँगती है। प्रेम कभी कुछ भी माँगता नहीं, देता ही रहता है। वासना कभी देती नहीं, माँगती रहती है। प्रेम सदा समर्पण में परिणीत होता है, वासना समर्पण माँगती है। वासना सदा अतृप्त रहती है तो, प्रेम सदा अपने आप में परिपूर्ण रहता है। वासना हमेशा दुःख में ही समाप्त होती है तो, प्रेम सदा आनंद में संपूर्णता प्राप्त करता है। वासना संताप की



राह से पश्चाताप की ओर ले जाती है तो प्रेम संतोष में परिपूर्णता को प्राप्त करता है। वासना में दो के दो ही रहते हैं तो, प्रेम में दो सदा ही एक हो जाते हैं। अद्वैत भक्ति। भक्ति में भक्त जितना भीना होता रहता है, उतनी ही उसकी दूरी अपने आराध्य से घटती जाती है और फिर एक दिन आता है कि जब यह दूरी पूर्णरूपेण मिट जाती है। भक्त कब भगवान बन जाता है और भगवान कब भक्त यह पता ही नहीं चलता। यही वो अनन्यता का भाव है जो हर सच्चा भक्त पाना चाहता है। साई को हम ऐसे पा लें कि हमारे बीच में से हम और साई दोनों ही लुप्त हो जाएँगे।

भक्त भावुक भी होना चाहिए। भावनाशून्य भक्त कभी भी भक्ति की राह पर आगे बढ़ ही नहीं सकता। उसे जब तक भक्ति में आनंद नहीं आयेगा, मस्ती का अनुभव नहीं होगा तब तक वह इस मार्ग पर आगे बढ़ ही नहीं सकता। भक्ति की राह में विमुख कर देने वाले अनेक विकर्षण मिलते हैं, जो भक्त को भक्ति की राह से विमुख कर देते हैं। घर-परिवार की ज़िम्मेदारियाँ, नौकरी-व्यवसाय की अनिवार्यता, अहंकार की प्रबलता, वैमनस्यता का भाव, लोभ की प्रवृत्ति, ईर्ष्यालु वृत्ति, कामिनी को पाने का भाव सदा ही भक्ति की राह में रोड़ा लाते हैं। जब तक भक्त अपने इष्ट के प्रति आसक्ति का भाव अपने मन में प्रबल नहीं कर लेता, तब तक वो अपने साध्य को पा नहीं सकता। साधक, साधन और साध्य जब तक एक पंक्ति में नहीं हो सकेंगे, तब तक भक्त भावप्रधान नहीं हो सकता। यह सभी भाव हमारे भीतर रहें और हम भक्ति की राह से विमुख न हों तभी भाव उत्पन्न होंगे। घर-परिवार की ज़िम्मेदारियाँ रहें, लेकिन इन ज़िम्मेदारियों में साई को सम्मिलित कर लेने से इनका भार कम महसूस होगा। अगर साई इनमें सम्मिलित रहें तो, सारे कार्य निर्विघ्न रूप से संपन्न होने लगते हैं। इसी प्रकार व्यवसाय की अनिवार्यता में हम मात्र धन कमाने का भाव न रखें, बल्कि उस व्यवसाय अथवा



नौकरी को उस भाव से करें कि साई ही हमारा मालिक है और साई ही हमारा ग्राहक तो यह कार्य आनंद का कारक बन जायेगा। अहंकार रहे, लेकिन साई के चरणों में समर्पित करने को। हर सफलता यदि हम साई को समर्पित कर दें और उसका श्रेय साई की अनुकम्पा को दें तो, हमारा अहंकार अपने आप साई को समर्पित हो जायेगा और हमारी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक नहीं बनेगा। मुश्किल है, लेकिन अभ्यास करने पर यह संभव हो जायेगा। हम दुश्मनी का भाव भी रखें, लेकिन दुश्मनी हो तो अपनी मानसिक दुर्बलताओं से हो। हम जहाँ-जहाँ साई पर पूर्ण विश्वास रखने में अपने आप को अक्षम पाते हैं, उन परिस्थितियों से वैमनस्यता रखें और अपने अविश्वास को पराजित करें। लोभ भी रखें, लेकिन साई दर्शन का, उनके अभयकारी श्रीचरणों का। दर्शन यदि चर्मचक्षु से न भी हो, पायें, तो अपनी मन की आँखों से हम उनके दर्शन कर सकें। ईर्ष्या भी हो, लेकिन ईर्ष्या अपनी भक्ति के पुराने निचले स्तर से हो, जहाँ हम दोबारा नहीं पहुँचना चाहेंगे। हम तो सदा ही इस मार्ग पर उत्तरोत्तर प्रगति करने की कामना करें। कामना रहे भी तो सदा साई के चरणों में ही रहने की। भाव सारे ही वही हैं, लेकिन उनका पुट भक्ति का साथ मिलने से बदल जाता है।

भावों के उज्ज्वल होने से शिर्डी हमारे अंदर जगमगाने लगती है। साई पास ही खड़े मिल जाते हैं, मानो हमें अपने से ही मिलवाने के लिए खड़े हों। शिथिल समय गुज़रने लगता है। जब कुछ भी कहने की ज़रूरत न पड़े, जब पाँव अपने आप साई की ओर बढ़ने लगें, जब सारा संसार साईमय लगने लगे तब समझो कि भक्ति में भाव का प्रवेश होने लगा है। मन की हर राह को भक्ति के पुष्पों से सजाना पड़ता है। अपने आप को जगाना पड़ता है, तब कहीं जा कर भक्ति का अंतःप्रवाह प्रारंभ हो जाता है। जिसको हम ढूँढ़ रहे होते हैं, उसकी पहचान मिलने लगती है, उसका मुख अपने मुख



के प्रतिबिम्ब में दिखाई देने लगता है। यह तब होता है, जब दूढ़ श्रद्धा जागृत होने लगती है। भक्ति भाव से ओत-प्रोत होने लगती है।

भाव की प्रबलता भक्त की भक्ति को इतना बल देती है कि बंद द्वार तक खुल जाते हैं। भावना के बहाव में भक्त के नयनों से भक्तामृत झरने लगता है। साधारण शब्द भजन बन जाते हैं। सादा भोजन प्रसाद बन जाता है। पानी चरण अमृत बन जाता है। प्राणवायु संजीवनी में परिवर्तित हो जाती है। अधिकार और दायित्व का भेद मिट जाता है। विचारों और चिंताओं की धुंध छट जाती है। रास्ते प्रकाशवान हो उठते हैं। लड़खड़ाते कदमों को साईं थाम लेते हैं। रास्ते के पत्थर को दाम मिल जाता है। टिमटिमाते दीप को नाम मिल जाता है और जीवन ध्येय को प्राप्त हो जाता है। यह साईं की कृपा ही तो है। यह भक्ति का ताप ही तो है। प्रश्न उत्तर बन जाते हैं।

जीवन की प्रत्येक क्रिया में साईं का समावेश अपने आप में जीवन को साईंमय बना देता है। रातों रात ऐसा हो पाना संभव नहीं है, लेकिन इसका भाव प्रबल होने से शैनेः-शैनेः साईं का प्रादुर्भाव हमारे जीवन में होने लगेगा। अब जो साईं दिखाई पड़ना शुरू होंगे वो पहले जिस साईं को हम जानते और मानते थे, उनसे भिन्न होंगे। यह वाले साईं और समीप होंगे। इनसे माँगने की आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि मन अब यह मान चुका होता है कि साईं से मत माँगो, साईं को माँगो। फिर यह साईं हमसे अभिन्न हो जायेंगे। ऐसा होते ही हर स्पंदन में, प्रत्येक श्वासोच्छ्वास में साईं समा जाते हैं। वो हमारे जीवन का आधार-केंद्र बन जाते हैं। साईं हमारे अंदर प्रवेश कर जाते हैं। यही उनका वैशिष्ट्य है। अपने से अभिन्न भक्त की पग-पग पर रक्षा करना साईं का दायित्व हो जाता है। जीवन में निश्चिंतता का समावेश हो जाता है। भय जाता रहता है। जीवन-पथ आनंद से भर उठता है, क्योंकि साईं हमें धन्य कर देते हैं। यह



धन्यता जीवन का सबसे बड़ा सत्य है जिसको पाने में एक नहीं कई सारे जीवन व्यतीत करने होते हैं।

❀ बाबा भली कर रहे... ❀

श्री सद्गुरु साईनाथर्पणमस्तु। शुभं भवतु।

मैन्ड्रेक पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित किताबें

